योग सिद्धान्तों एवं शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

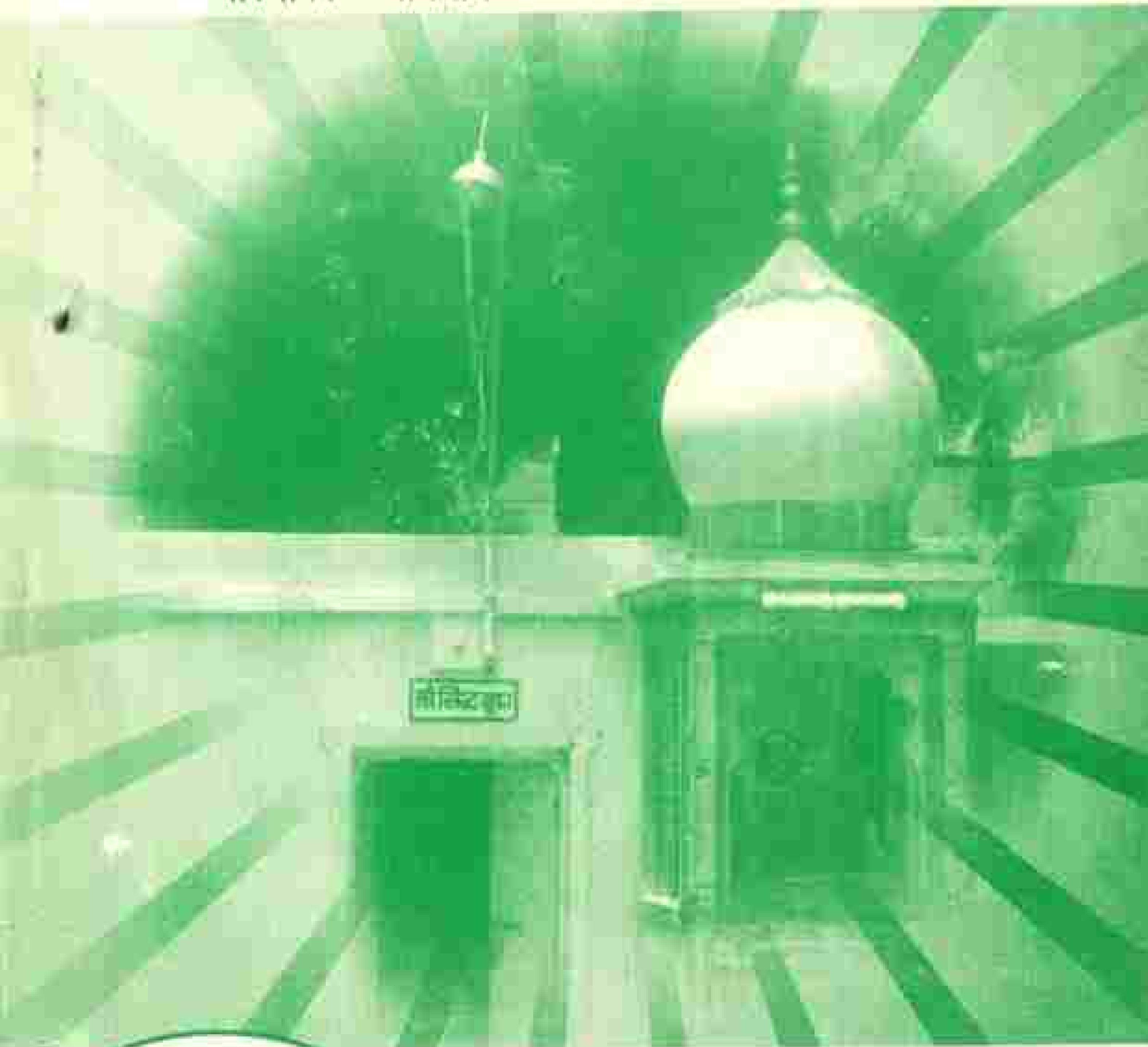

वर्ष : 39 ~ अंक : 8
नवम्बर, 2006

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सँवाई-283202 (आगरा) उ.प्र.

अमृतकण

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
स गुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते।।

अर्थात् जो पुरुष अव्यभिचारी भक्तियोग के द्वारा मेरा सेवन करता है, वह गुणों को अतिक्रम कर ब्रह्मभाव को प्राप्त करने में समर्थ होता है।

✿ ✿ ✿

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्।।

(कठोपनिषद १/२/२४)

अर्थात् प्राणी जब तक दुराचार से निवृत्त नहीं होता, इन्द्रिय दमन नहीं करता और उसका चित्त शान्त नहीं होता, तब तक वह केवल ब्रह्मज्ञान से भी परमात्मा की प्राप्ति नहीं कर सकता।

✿ ✿ ✿

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नाम रूपे विहाय।
तथा विद्वान् नाम रूपाद्विमुक्तः परात् परं पुरुषं मुपैति दिव्यम्।।

(मुण्डकोपनिषद ३/२/८)

जिस प्रकार निरन्तर बहती हुई नदियाँ अपने नाम रूप को त्याग कर समुद्र में लीन हो जाती है, उसी प्रकार विद्वान नाम–रूप से मुक्त होकर परात्पर दिव्य पुरुष को प्राप्त हो जाता है।

✿ ✿ ✿

अनित्यानि शरीराणि विभवोनैव शाश्वतः।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्म संग्रह।।

(चाणक्य नीति)

हमारा शरीर नाशवान है, धन सम्पदा आनी–जानी है सदा रहने वाली नहीं है, मृत्यु हमेशा सिर पर मंडराती रहती है। अतः हमारा कर्तव्य है कि धर्म का संग्रह (आचरण) करें।

✿ ✿ ✿

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवांई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 39 अंक 8	ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम् मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः। तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्, कल्याणां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।	नवम्बर 2006

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै-
र्वेदैः सांगपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः।
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः।।

(श्रीमद्भागवत १२/१३/१)

अर्थात्

ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र रुद्र और मरुद्गण जिनका दिव्य स्त्रोतों द्वारा स्तवन करते हैं, सामगान करने वाले लोग अंग, पद, क्रय और उपनिषदों के सहित वेदों द्वारा जिनका गान करते हैं, ध्यानमग्न एवं तत्कालीन चित्त से योगी जिनका साक्षात्कार करते हैं और जिनका पार सुर और असुर कोई भी नहीं पाते, इन भगवान विष्णु को नमस्कार है।

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डा.) रामलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक :
डा. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष
एवं गुरु भाई-बहिन

इस अंक में ...

1.	विशेष लेख — योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज	3
2.	सम्पादकीय	10
3.	ध्यान कैसे करें — डा० रुद्रदत्त चतुर्वेदी, रामपुर	13
4.	जीवनयापन की श्रेष्ठतम् पद्धति...... — ब्रह्मचारी ओमप्रकाश, लखनऊ	17
5.	सुषुम्ना और कुण्डलिनी — स्वामी इन्द्रानन्द उदासीन	21
6.	शरीर-क्षेत्र — अनन्तश्री देवरहा बाबा	24
7.	तुलसी का पौधा — डा० श्रीगोपाल प्रसाद 'वंशी'	28
8.	जीवनी शक्ति कुण्डलिनी — जे. पी. शर्मा, पौंटा साहिब (हि० प्रदेश)	34
9.	प्रभु-भजन — महेन्द्र-माधुरी (वाराणसी)	37
10.	लीलावसान के बाद स्थूल दर्शन — केशव देव उपाध्याय (वाराणसी)	38
11.	श्री गुरुपद — दिनेश शर्मा, जरेरा (दिल्ली)	40

एक प्रति	: रु.	10.00
वार्षिक शुल्क	: रु.	110.00
द्विवार्षिक	: रु.	200.00
आजीवन	: रु.	825.00

विशेष लेख

ध्यान की विधियाँ एवं उनकी अतुलित शक्तियाँ

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

श्री प्रभु जी ध्यान की विधियाँ बताया करते थे। एक जगह पर एक अच्छे महात्मा अच्छी स्थिति के थे। उनसे मेरे सामने ही किसी व्यक्ति ने श्री प्रभुजी के विषय में पूछा–महात्मा जी ! प्रभु जी क्या है ? कैसे हैं ? इस पर उन्होंने कहा–श्री प्रभु जी परम योगेश्वर सर्वशक्तिमान हैं। उनकी ताकत का कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता–कोई अन्त ही नहीं। किन्तु फिर एक बात और कही–उनकी भावना से किसी और को, किसी और आकृति को भी देखोगे तो वह आकृति भी तुम्हारे लिये सिद्ध हो जायेगी–तुम जिसका ध्यान करोगे वह भी सिद्ध हो जायेगा।

उस समय मुझे भगवान के ये शब्द याद आये **श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः सः एव सः** अर्थात् जिस की जैसी श्रद्धा होती है परमात्मा वैसे ही बन जाते हैं। हम भगवान राम की, भगवान कृष्ण की, भगवान शिव की तस्वीरें देखते हैं वह मन की कल्पना ही है। हमने भगवान राम को नहीं देखा, भगवान कृष्ण को नहीं देखा। पुस्तकों को पढ़कर अथवा किसी से सुनकर के, तस्वीर बनाने वाले के मन में जो तस्वीर बनती है, वैसे ही तस्वीर बना लेता है। तुमने बाजार में जाकर देखा होगा भगवान कृष्ण की कई तस्वीरें होती हैं। लेकिन ये तस्वीरें एक दूसरे से मिलती नहीं हैं। तस्वीर भिन्न–भिन्न होती हैं। बनाने वाले के दिमाग में जैसे–जैसे भाव होते हैं उसी कल्पना से चित्र बना लिया करता है। योग दर्शन में समाधि की प्राप्ति के बहुत से उपाय हैं। उनमें एक उपाय है '**वीतराग विषयम् वा चित्तम्** अर्थात् वीतरागी पुरुषों के ध्यान से भी समाधि होती है। वीतराग पुरुष का जब हम चिन्तन करते हैं तो वह ही हमारे लिये परमेश्वर बन जायेगा। जब हम चिन्तन आरम्भ करते हैं तो वह हमारी कल्पना ही होती है। किन्तु ध्यान करने वाला जब उस आकृति का ध्यान करेगा तो उसकी अपनी मानसिक शक्ति से ध्यान की शक्ति से उस तस्वीर में प्राण स्पन्दन होने लगेगा, तस्वीर बोलने लगेगी–आशीर्वाद देगी। यह बातें तस्वीर से होने लगेंगी।

हमें बहुत से ऐसे व्यक्ति मिलते हैं जो श्रद्धापूर्वक भगवान की मूर्तियों का ध्यान किया करते हैं। श्री प्रभु जी बताया करते थे–इन मन्दिरों का निर्माण क्यों हुआ ? यह केवल आरती पूजा के लिये ही नहीं है–मूर्तियों से मनुष्य के मन में श्रद्धा अंकुरित हो जाती है।

वही चित्र देखते–देखते हमारे चित्त में अंकित हो जाता है और जब हम उनका ध्यान करते हैं तो वही चित्र ध्यान में आने लगेगा। ध्यान में जो आकृति बन जायेगी उसके अन्दर अपने आप प्राण समाविष्ट हो जाया करता है। और वह आकृति बोला करती है। आशीर्वाद देती है आदि–आदि कार्य होने लगते हैं। संसार में सभी शक्ति प्राप्त करना चाहते हैं। वह शक्ति जो शक्तिशाली है, उनसे मिला करती है। योगी लोग दूसरे की शक्ति को प्राप्त करने के लिये क्या करते हैं ? इसके कई उपाय हैं। पहला उपाय है य दि कोई योगी हमसे शक्तिशाली है तो उससे शक्ति प्राप्त करने का उपाय तो यह है **'तद्विद प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया'** उन्हें नमस्कार करो, उनकी सेवा करो तब वह प्रसन्न होकर अपने ज्ञान का उपदेश करेगा। जब तक वह प्रसन्न नहीं होगा तब तक अपने भीतरी अनुभव व ज्ञान को नहीं बतायेगा–यह शक्ति प्राप्ति का एक उपाय हुआ।

दूसरा उपाय है जो ध्यान से सम्बन्ध रखने वाला है। हम चाहते हैं अमुक व्यक्ति क्या मन्त्र जप रहा है तथा उसके मन में क्या–क्या विचार आ रहे हैं यह जानें, तो इसका उपाय यह है कि यदि हमारे मन की ताकत बढ़ी हुई है धारणा ध्यान का अभ्यास करते–करते मानसिक स्थिति जिसकी इतनी उत्कृष्ट हो गई हो कि वह अपनी ताकत से दूसरे को आकर्षित कर सके, अपने पास बुला सके। जैसे लोक में एक प्रभावशाली व्यक्ति किसी को बुलाता है इधर आओ ! तो वह तुरन्त आ जाता है। पता नहीं गुरुजी मुझे क्यों बुला रहे हैं ? यह सोचकर दौड़ा हुआ आता है–या मालिक अपने किसी नौकर को बुलाता है तो वह आवाज सुनते ही तुरन्त भागा चला आता है। इसी प्रकार से योगी की अपनी ताकत होती है। योगी जिस जीव को बुलाना चाहता है ध्यान में बैठकर जिसके लिये संकल्प करता है वह आकृति (व्यक्ति) जहाँ भी हो चटपट उसी समय सामने आ जायेगा। ताकत वाला उसके सूक्ष्म शरीर को खींच लेगा। वह चला आयेगा। उसके सूक्ष्म शरीर से जो भी पूछना चाहेगा सूक्ष्म शरीर सब कुछ सत्य–सत्य बता देगा। सूक्ष्म शरीर की भी आकृति वैसी ही होती है जैसे स्थूल शरीर की। सूक्ष्म शरीर का पुतला सामने आयेगा और योगी के प्रभाव से सब कुछ बता देगा।

तीसरा उपाय एक और है वह है **'मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धि निवेशय का'**। यदि कोई योगी किसी के मन की स्थिति जानना चाहता है तो उसे योग ध्यान की विधि से जान पायेगा। ध्यान की स्थित में ध्याता, ध्यान और ध्येय तीन वस्तुयें रहा करती हैं। ध्यान करते–करते ध्येय ही सामने रहता है। वही–वही दिखलाई देता है। यह पातंजल ध्यान पद्धति है। एक और भी ध्यान की पद्धति है वह है **'ध्यानं निर्विषयं मनः'** अथवा **'न किञ्चिदपि चिन्तयेत्'**। मनुष्य ध्यान में बैठ जाये और किसी भी वस्तु का चिन्तन न करे।

मन को विचारों से शून्य करदे इसमें भी वृत्ति निरोध हो जाती है। मैंने तुम्हें बताया था कि योग दो प्रकार से प्राप्त होता है। सिद्धों की कृपापूर्वक शक्तिपात द्वारा तथा साधन योग से। ध्यान धारणा का अभ्यास, प्राणायाम, बन्ध–मुद्राओं का अभ्यास साधन योग है। मनुष्य अपनी योग स्थिति बनाने के लिये जो भी प्रयत्न करता है वह सब साधन योग है। समाधि प्राप्त के लिये वीतराग पुरुषों का ध्यान करते हैं। किन्तु ध्यान इसलिये नहीं करते हैं कि उनसे कुछ प्राप्त कर लें। योगी उनके स्वरूप को ध्येय बनाकर उनका चिन्तन किया करते हैं। उसमें ही समाधि हो जाया करती है ध्यान करने से ही उन्हें वीतरागियों को ज्ञान हो जाता है। हमारे मन में धारणा बनी– हे शिव ! हे विश्वनाथ ! तो यहाँ संस्कार बने इधर उनको ज्ञान हो गया। अमुक व्यक्ति मुझे याद कर रहा है। चिन्तन मात्र से महापुरुष–सिद्ध पुरुष ध्यान करने वाले को जान लेते हैं। क्योंकि उनका अन्तःकरण शुद्ध होता है। उनका जो जैसा चिन्तन करता है उसी रूप में उनके सामने आ जाता है। यदि कोई प्यार करता है तो प्यार करता हुआ उसका सूक्ष्म शरीर सामने आ जायेगा। यदि कोई क्रोध करता है, सूक्ष्म शरीर क्रोध करता हुआ सामने आ जायेगा। चिन्तन से ही वे जान लिया करते हैं क्योंकि वे सर्वसमर्थ हैं। किन्तु उनके अतिरिक्त भी एक योगी जो नियम से ध्यानाभ्यास करते हैं वह भी अपने संस्कारियों को जान लेते हैं। उनको भी ज्ञान हो जाता है कि अमुक व्यक्ति मुझे याद कर रहा है। अमुक भक्त को दुःख हो रहा है आदि–आदि बातें तत्काल ज्ञात हो जाती हैं।

द्रोपदी ने कौरवों की भरी सभा में संकट के समय भगवान को याद किया। सबसे पहले द्रोपदी ने भगवान के लिये एक बात कही–

कृष्ण कृष्ण महायोगिन् कृष्ण गोपीजन प्रियः।
कौरवार्णव निमग्नां मां किं न पश्यसि केशव।।

हे महायोगी मुझे आप क्यों नहीं देख रहे हैं ? उसके कहने का अभिप्राय यह है कि आप तो महायोगी हैं। एक साधारण योगी भी जिसका अच्छा ध्यान लगता है, इस बात को जान लेता है कि मेरे अमुक भक्त को कष्ट है, अमुक मित्र को संकट है। आप तो महायोगी हैं आप मुझे क्यों नहीं देख रहे हैं ? मैंने दो दिन पूर्व प्रातिभ ज्ञान का वर्णन किया था। इसके उदय होने पर योगी के मन में सत्याभास होता है। जो कुछ जैसा हो रहा है वैसा ही उनके मन में भावना बनती है। वह देखता नहीं है। देखना तो उसके संकल्प पर होगा बाद में। यदि उसके मन में भावना आ रही है, अमुक स्थान पर वर्षा हो रही है तो उस स्थान पर वर्षा हो ही रही होगी, इसमें शंका की कोई बात नहीं होगी। मैंने तुम्हें कई बार पहले भी रामस्वरूप सफीदों वाले की घटना सुनाई थी। हमारे एक महात्मा ने उनसे कह

दिया कि आप जल्दी–जल्दी दीक्षा ले लो। उसने जल्दी दीक्षा ले ली। बाद में उससे पूछा–आपने जल्दी दीक्षा लेने के लिये क्यों कहा ? उन्होंने कहा–तुम्हारी पत्नी को प्रसव हो गया है, उन्होंने लड़के को जन्म दिया है। सूतक से पहले ही दीक्षा लेनी चाहिये इसलिये मैंने जल्दी करने के लिये कहा था। बात ज्यों की त्यों थी। गुफा पर बहुत से आदमी मौजूद थे। उन्होंने पूछा–महाराज आपको कैसे पता लगा कि इसकी स्त्री को प्रसव हो रहा है। क्या आपने प्रसव होते हुये देखा ? या आपको कोई स्वप्न हुआ। आपको कैसे पता लगा ? तो उसने बिल्कुल सत्य बताया–मैंने देखा नहीं, नजर मेरी नहीं गई, किन्तु मेरे मन में भाव आया, बच्चा पैदा हो रहा है–ऐसा संकल्प मेरे मन में आया। ऐसे संकल्प जब मेरे मन में आते हैं, सब सत्य होते हैं, इसलिये मैंने अपने संकल्प के आधार पर कह दिया कि जल्दी दीक्षा ले लो। और संकल्प आने के बाद जब योगी देखना चाहे तो उसके संकल्प से तत्काल दृष्टि भी वहां पहुँच जाती है। और उसे सब कुछ दीख जाता है।

बनारस में हमारा एक महात्मा सच्चिदानन्द रहता है। श्री प्रभुजी के चरण कमलों में आया था। श्री प्रभुजी ने उसे रसोई के काम के लिये चार–पाँच रुपये मासिक वेतन पर रख लिया था। मैं भी उन दिनों श्री प्रभु के चरणों में ऋषिकेश रहा करता था। थोड़े दिनों में उसे विरक्ति हो गई और उसने स्वर्गाश्रम में जाकर संन्यास ग्रहण कर लिया। संन्यास तो ले लिया, किन्तु श्री प्रभुजी की कृपा से उसका ध्यान अपने आप चलता था। हमारे भाई बहिनों के बीच ध्यान में बैठने से भी उसकी स्थिति बढ़ी। संन्यास लेने पर भी बाद में श्री प्रभु जी से योग दीक्षा ले ली। वह वृद्ध हो गया है कानों से भी कम सुनाई देता है। हमारा एक बच्चा विष्णु है वह उनके पास जाया करता है–वह विष्णु से कहता था–देखो विष्णु ! इस दीवार के अन्दर सिद्ध लोग आ रहे हैं श्री प्रभु जी आ रहे हैं। मैं इस दीवार से आगे के दृश्य देख रहा हूँ। यह सब उसके आत्मा ध्यान की बातें हैं। मैं तुम्हें जिस बात को समझाना चाहता हूँ वह यह है कि जब योगी को प्रातिभ ज्ञान हो जाता है तो वह सत्य संकल्प वाला हो जाता है। उसके मन में संकल्प आ रहा है, अमुक स्थान पर वर्षा हो रही है, अमुक स्थान पर अग्निकाण्ड हो रहा है, तो ये बातें वस्तुतः हो रही होंगी तभी उसके मन में संकल्प आया। प्रातिभ के अनुसार वह हजारों कोस दूर की वस्तु को भी छू लेता है। यदि देखना चाहता है तो कोसों दूर की देख लेता है। यदि हजारों कोस दूर की बात सुनना चाहता है तो सुन लेता है। यह सब बातें उसमें स्वाभाविक आ जाती हैं। मुझे आनन्दकन्द प्रभुजी की एक घटना याद आई। एक बार श्री प्रभुजी अमृतसर में विराजमान थे और कुछ दिन के लिये उन्होंने ऐसा कर दिया था कि अपने कमरे बन्द रखते थे किसी से मिलते–जुलते नहीं थे। खास आवश्यक हुआ तो ही मिलते थे, अन्यथा नहीं मिलते थे।

उस समय वहां पर लोग दर्शन करने आते थे, दर्शन करके तुरन्त लौट जाया करते थे।

श्री प्रभु जी के लीलावसान के बाद अमृतसर का एक ब्राह्मण जगन्नाथ वैष्णव देवी के दर्शन करने जा रहा था। जाते–जाते वह पहाड़ पर किसी गड्ढे में गिर गया उसने किसी योगी के बारे में सुन रखा था कि वहाँ आसपास में बहुत बड़े योगी रहते हैं। जगन्नाथ की प्रभु जी में श्रद्धा नहीं थी। वे उन्हें ढोंगी ही मानता था। कहता था जैसे ब्राह्मण वे वैसे हम हममें उनमें क्या फर्क है ? किन्तु जिस समय वह उस गड्ढे में गिर गया तो उसके मन में धारणा आई कि यदि प्रभु जी शक्तिमान हैं तो ऐसी कृपा करें कि योगी के दर्शन हो जाये। उसके मन में ऐसे विचार आते ही योगी सामने आ गये। क्यों ? क्यों खड़ा है यहाँ पर ? वह कहने लगा–महाराज ! मैं आपके दर्शन करने आया हूं। योगी कहने लगे–तू मूर्ख है ! सूरज को छोड़कर दीपक के पास आया है ? वह ब्राह्मण कहने लगा–महाराज ! कौन सूरज और कौन दीपक, मैं समझ नहीं पा रहा हूं। महाराज ने कहा–सूरज तो वे जिनसे तू हाथ जोड़कर प्रार्थना कर रहा था कि ऐसी कृपा करें मुझे योगी के दर्शन हो जावे–मैं दीपक हूँ उनका ही बच्चा हूँ। इसके बाद वे महात्मा उस ब्राह्मण को अपनी गुफा में ले गये–जगन्नाथ ने देखा–गुफा में बड़ा प्रकाश हो रहा है वहाँ श्री प्रभुजी का बड़ा चित्र है। चित्र पूजित है आरती की ज्योति जल रही है। गुफा में बहुत भारी प्रकाश को देखकर ब्राह्मण कहने लगा–महाराज ! यहाँ यह इतना प्रकाश कहाँ से आ रहा है ? महात्मा ने कहा– यह उन्हीं की कृपा की लाईट है। ब्राह्मण ने पूछा–महाराज–उनका यह चित्र आपके पास यहाँ पहाड़ में कैसे आया ? महात्मा ने एक घटना बतलाई। वह कहने लगा–देखो, एक बार श्री प्रभुजी ने एकान्तवास शुरु कर दिया था, उनकी दाढ़ी काफी बढ़ गई थी उनका विचार था कि वह नेपाल को चले जायें, उस समय बहुत से योगी उनसे प्रार्थना करने के लिये जाते थे कि प्रभु जी अभी आप नेपाल को न जायें। अभी आपने अपने बच्चों का उद्धार करना है। योगियों में मैं भी था। मैं उनके पास उस कोठी में मिलने गया था। पं० जगन्नाथ ने पूछा–महाराज ! आप कौन सी कोठी में गये थे–महात्मा जी ने कहा–रेलवे स्टेशन के पास एक बड़ी सी कोठी में प्रभुजी एकान्तवास कर रहे थे। वहाँ हम लोग गये थे। वह कोठी ला० चुन्नी लाल की कोठी थी। यह चित्र मैंने वहाँ कोठी में देखा था–उस समय मैंने कुछ नहीं कहा। किन्तु मेरे मन में भावना बनी कि प्रभुजी यह चित्र मुझे दे दें। किन्तु मैंने उनसे कुछ नहीं कहा–ऐसी भावना को लेकर मैं वापिस आ गया, यहाँ गुफा में आने पर भी मेरी यह भावना बनी ही रही कि चित्र हमें मिल जाता तो अच्छा था। एक दिन प्रभु जी ने वहीं से ही उठाकर यह चित्र हमें दे दिया था। यह श्री प्रभुजी का दिया हुआ चित्र है इसका हम पूजन करते हैं। इन्हीं का प्रकाश इस गुफा में है।

मेरे कहने का अभिप्राय यह–'ततः **प्रातिभश्रावण वेदनादर्शास्वाद वार्ता जायन्ते**' यह योग दर्शन का सूत्र है। इसका अर्थ यह है कि योगी को पहले प्रातिभ ज्ञान होता है। प्रातिभ ज्ञान होने पर योगी को **सत्यानुभूति** होती है। मन के अन्दर कोई कुसंकल्प आता ही नहीं। जो वर्तमान में होने वाला है वही संकल्प आता है। प्रातिभ ज्ञान के बाद यदि योगी उस घटना को देखना चाहे तो देख भी लेता है। उपनिषदों में जहां हम ब्रह्मलोक का वर्णन पढ़ते हैं वहीं पर इस प्रकार की बातें आती हैं जैसे कल परसों मैं अपने व्याख्यान में देवलोक में रहने वाले की शक्ति का वर्णन कर रहा था–उनमें शक्ति विशेष हुआ करती है। जैसे हमारे मनुष्य लोक में पक्षियों को स्वभाव से ही आकाश गमन होता है किन्तु मनुष्य नहीं उड़ सकता। क्योंकि मनुष्य के अन्दर यह ताकत है नहीं। मनुष्य यदि आकाश में उड़ना चाहेगा तो उसके लिये आवश्यक है समाधि लगाये, संयम करे। उसके बाद आकाश में उड़ने की ताकत आ जायेगी। **''कायाकाशयोः सम्बन्ध संयमात्लधुतूल समापत्तेश्चाकाश गमनम्''** शरीर और आकाश के सम्बन्ध में जब योगी संयम करता है तो शरीर रूई के मानिन्द हल्का हो जाता है और धीरे–धीरे आकाश में उड़ने लगता है। किन्तु पक्षियों को यह शक्ति स्वभाव से प्राप्त है। इसी प्रकार से देवलोक के जो देवता हैं उनके अन्दर आकाश गमन करना, दूर का देखना, दूर का सुनना वरदान व अभिशाप देना आदि ताकतें स्वभाविक हुआ करती हैं और वहाँ बुढ़ापा और मौत वगैरह नहीं आती। उन्हें बुढ़ापा नहीं आता और प्राण हमारी तरह नहीं छोड़ते। उनके शरीर पुण्य क्षीण होने के साथ–साथ अपने आप घटते रहते हैं। एकदम दिव्य आत्म तेज के द्वारा दूसरी जगह जन्म ले लेते हैं।

मैं अभी तुम्हें इन देवलोक से आगे ब्रह्मलोक के देवताओं के बारे में बता रहा था। वहाँ के आत्माओं में योगियों वाली विशेष शक्ति स्वाभाविक होती है। वहाँ के देवता ब्रह्माण्ड में कहीं की भी बात सुनना चाहें तो **'श्रृण्वन श्रोतम् भवति'** इच्छा मात्र से उनके कान हो जाते हैं। मनुष्य लोक में हमें एक दूसरे की बात को सुनने के लिये कान लगाना पड़ता है। इस प्रकार से थोड़ी दूर की आवाज को ही हम सुन पाते हैं। ब्रह्मलोक के देवताओं के मन में आया हम सुन लें तो **'श्रृण्वन् श्रोतम् भवति'**। यदि ब्रह्मलोक के किसी आत्मा को ख्याल आया कि मैं मनुष्य लोक के अपने अमुक व्यक्ति की बात सुनूँ तो सुनने की भावना मात्र से कहीं भी कोई भी शब्द हो सुन लेता है वे तेजस जीव होते हैं तेज में विलीन रहा करते हैं। सुनना चाहते हैं तो सुन लेते हैं। **'पश्यन् चक्षुः भवति'**–देखना चाहें तो आँखें हैं। हम लोगों को आँखों से एक तरफ का दिखाई देता है जिधर आँखें हैं, पीछे की वस्तु को देखना हो तो पीछे मुड़ने पर ही दिखाई देगा। वह भी एक सीमित दूरी तक। हमारी नेत्र की शक्ति आँखों के गोलक के दायरे में है। किन्तु ब्रह्मलोक के वासियों को ऐसा नहीं करना पड़ता।

वहाँ गोलकों की आवश्यकता नहीं पड़ती, सुनना चाहते हैं, कान हो जाते हैं **'स्पर्शन् त्वग् भवति'** किसी को छूना चाहें तो छू लेते हैं। उनमें विकरण भाव होता है। बिना इन्द्रियों के सब काम कर लेते हैं। ये प्रकृतिलीन से ऊपर हैं व एक दिव्य तेज में फिरा करते हैं। दिव्य तेज में ही सुनने, देखने, छूने आदि की इच्छा होते ही सब कार्य हो जाते हैं। योगियों के अन्दर यह शक्ति योग ध्यान के द्वारा स्वतः प्राप्त हुआ करती है।

मुझे एक घटना और याद आई जो इस सिद्धान्त को और स्पष्ट करने वाली है। श्री प्रभुजी ऋषिकेश आश्रम में विराजमान रहा करते थे। उनके चरण कमलों में एक महात्मा आया, उसने उनसे योगी दीक्षा ग्रहण की। कैसे ग्रहण की, यह बात मैं तुम्हें बताऊँ। श्री प्रभु जी शाम को गंगा किनारे घूमने जाया करते थे। मैं भी उनके साथ होता था। वहाँ गंगा किनारे पत्थर पर एक महात्मा बैठा रहता था। माला तुलसी की रखता था और भजन में बैठा रहा करता था। श्री प्रभुजी ने उस महात्मा को गौर से देखा और आगे चल पड़े। जो साथ में समझदार थे वे कहने लगे कि हाँ प्रभु जी ने इस पर तो कुछ कृपा कर दी। दूसरे दिन फिर प्रभु जी वहाँ गये। उस दिन वह महात्मा बिल्कुल निस्तब्ध बैठा था–दो तीन दिन के बाद वे महात्मा अपने आप आश्रम में आया और योगी दीक्षा प्राप्त की। योग दीक्षा प्राप्त करने के बाद उसका योग ध्यान चलने लगा। उसने श्री प्रभुजी से एक सवाल किया कि प्रभु जी ऐसी कृपायें आप उन्हीं पर करते हैं जो आप से दीक्षा लेते हैं या और भी लोगों पर दूसरी जगह भी करते हैं। श्री प्रभुजी हँस पड़े कहने लगे–वे सर्वशक्तिमान प्रभु सब पर सभी जगह कृपा करते हैं। वह कहने लगा–मैंने आप की कृपा अनुभव तो गंगा किनारे कर लिया था किन्तु दीक्षा के बाद ध्यान की स्थिति ऊँची हो गई है। तो प्रभुजी आप यह बतायें दूसरी जगह आप कैसे करते हैं ? वह श्री कृष्ण में प्रेम रखता था। श्री प्रभुजी कहने लगे–जा, मथुरा वृन्दावन चला जा वहाँ पर अपने इष्ट देव का ध्यान करते रहना, वहाँ तुम्हें इन बात का जबाब अपने आप मिल जायेगा। बेकार क्यों मेरा कान खाया करता है। श्री प्रभुजी की आज्ञा पाकर वह वृन्दावन चला गया। वहाँ जाकर गाजीपुर में बरसाना नन्द गाँव के बीच में प्रेम सरोवर में रहा। वहीं पास में राधा गोविन्द जी का मन्दिर है, वहाँ जाकर के वह महात्मा रहा। आजकल तो प्रेम सरोवर में बहुत परिवर्तन हो गया। उस प्रेम सरोवर में वह महात्मा रात को घूमा करता था। और प्रभु जी की कृपाओं का अनुभव किया करता था। वहीं पर श्री प्रभुजी ने उसे अनुभव करा दिया कि श्री प्रभु जी कहीं पर भी किसी पर भी कृपा कर सकते हैं, इसलिये सर्वशक्तिमान गुरुदेव श्री प्रभुजी के अभय चरणों को पाकर अपने को ध्यानी–योगी बना लो, तभी देह धरे का फल मिलेगा। बार–बार आशीर्वाद।

✲✲✲

● सम्पादकीय

योग और वेदान्त

आचार्य (डा०) दासलाल ब्रह्मचारी

षड्दर्शनों में योग और वेदान्त अलग–अलग किन्तु प्रमुख दर्शन है। सांख्य दर्शन को योग के साथ ही जोड़कर एक दर्शन के रूप में माना जाता है जो सम्मिलित रूप में सांख्ययोग के नाम से जाना जाता है। सांख्य शास्त्र में पच्चीस तत्वों का निरूपण होने से तत्वों की संख्या का वर्णन होने के कारण ही इस का 'सांख्य' नाम पड़ा है। सांख्य शब्द ज्ञान का भी बोधक है। इन पच्चीस तत्वों का बोध हो जाने पर अविद्या से छूटकर मनुष्य मुक्ति भाजन बन जाता है। भगवान् ने गीता में कर्म एवं ज्ञान, इन दो निष्ठाओं का वर्णन किया है। **'ज्ञानयोगेन सांख्यानाम् कर्मयोगेन योगिनाम्'** अर्थात् हे अर्जुन ! ज्ञानयोग के माध्यम से सांख्यनिष्ठ साधक एवं कर्मयोग से योगनिष्ठ साधक अनादि काल से होते चले आ रहे हैं। गीता के तीसरे अध्याय में भगवान ने कर्मतत्व का विस्तार से निरूपण करते हुये जगत यात्रा एवं ज्ञान सिद्धि का संकेत दिया है। इस प्रकार कभी कर्मयोग एवं कभी कर्मसन्यास की प्रशंसा सुनकर अर्जुन भ्रमित सा होकर भगवान से कहते हैं। भगवान आप मुझे वह मार्ग बतलाइये जिससे मेरा कल्याण हो। इसके उत्तर में भगवान् कहते हैं–हे अर्जुन ! कर्मसंन्यास एवं कर्मयोग दोनों ही मोक्ष के दाता हैं। किन्तु कर्मसंन्यास से कर्मयोग श्रेष्ठ है'। वस्तुत कर्मयोग से ही कर्मसंन्यास की सिद्धि हो सकती है इसलिये भगवान ने कहा–जो व्यक्ति संसार में किसी से भी द्वेष नहीं करता और न ही किसी वस्तु की आकांक्षा करता है। ऐसा निर्द्वन्द्व कर्मसंन्यासी व्यक्ति बन्धन से सहज ही छूट जाता है। **'एकं सांख्य च योगं च य पश्यति स पश्यति'** अर्थात् जो कर्मसन्यास एवं कर्मयोग दोनों को एक ही लक्ष्य स्थल की प्राप्ति कराने वाला जानता है वह यथार्थ में जानता है। वास्तव में यह एक निश्चित सी बात है कि कर्मयोग के द्वारा ही नैष्कर्म्यसिद्धि को प्राप्त किया जा सकता है। वेद भगवान् की भी आज्ञा है कि मनुष्य कर्म करते हुये सौ वर्ष जीने की इच्छा करे। ऐसा करने से उसे कर्मफल लिप्यमान नहीं करता। योग साधना के क्रमविधि का उपदेश करते हुये गीता में भगवान् ने इसी बात का संकेत करते हुये कहा है कि जो योग में आरूढ़ होना चाहता है उसके लिये कर्म ही विकास का कारण बनता है किन्तु जो योगारूढ़ हो चुके हैं उन्हें अपनी सूक्ष्म वृत्ति सहित मन को संयम में रखना ही उभय लक्ष्य की ओर अग्रसर होने में पर्याप्त है। यह बात भी भगवान् ने गीता में स्पष्टतः कह दिया है कि कर्मयोग के बिना कर्मसन्यास बहुत ही कठिन है जबकि योगयुक्त मुनि ब्रह्म को तत्काल ही प्राप्त कर लेता

है।

सात्विक दृष्टि वाले लोग योग और वेदान्त को एक ही मानते हैं किन्तु ये देखने में आता है इनके मतानुयायियों की भिन्न-भिन्न मान्यता है। वेदान्त को पढ़ने-पढ़ाने वाले कई लोग योग को अवर श्रेणी में रखकर ही बात किया करते है। उन लोगों की इस प्रकार की धारणा योग के वास्तविक स्वरूप को न समझने के कारण ही है। योग साधना भी है और साध्य भी है। इसलिये कहीं-कहीं पर शास्त्रों में यदि योग की गौणता परिलक्षित होती है तो वहीं पर योग-क्रियाओं का सम्बन्ध ही जानना चाहिये। साधकों में कभी-कभी ऐसे साधक भी मिल जाते है जो वेदान्त को पढ़कर या सुनकर कह दिया करते हैं कि वेदान्त की साधना तो सरल है और योग की साधना नीरस व कठिन है। 'जीवो ब्रह्मैव नापरः' यह जीवन ब्रह्म ही है और कुछ नहीं। इस सिद्धान्त को पढ़कर वे सोच लेते है कि हमें कुछ करने की आवश्यकता नहीं है हम तो ब्रह्म है ही।

योग मार्ग में तो आसन करने पड़ते है, नेति-धौति आदि षटकर्म की क्रियायें करनी पड़ती है। प्राणायाम, प्रत्याहार एवं धारणा-ध्यान की कठिन साधनाओं का अवलम्ब लेना पड़ता है। वेदान्त में ऐसा कुछ नहीं करना पड़ता। किन्तु उन लोगों को नहीं मालूम कि बिना लम्बी साधना के अविद्या की गाँठ टूट नहीं सकती है। थोड़ी देर के लिये स्वयं को ब्रह्म मान लेने मात्र से ब्रह्म नहीं बन जाते। परमात्मा की गुणमयी दैवी माया समस्त चराचर को व्याप्त किये हुये है। जीव के प्राक्तन कर्म संस्कार इतने दृढ़ होते है कि वह परवश हो उन्हीं के अनुसार बर्तता है। योग मार्ग की साधना सीढ़ी दर सीढ़ी चढ़ने की साधना है। संसार वासना रूपी जाल को काटने के लिये समाधि रूपी खड्ग का ही आश्रय लेना परमावश्यक हो जाता है। जब साधक ठीक तरीके से समाधि का अभ्यास करते-करते ब्रह्म ज्ञान के निकट पहुँचने लगता है। तो सिद्धियों एवं शक्तियों के रूप में बहुत से लक्षण प्रकट होने लगते हैं जिनके कारण सृष्टि के समस्त रहस्य करतल-आमलकवत् उसके हस्तगत हो जाते है।

आदि गुरु शंकराचार्य वेदान्त दर्शन के आचार्यों में मूर्धन्य है। उन्होंने अपने ग्रन्थों में इस बात का स्पष्ट रूप से संकेत किया है कि ब्रह्म का अपरोक्ष ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान है और इस ज्ञान की प्राप्ति बिना योग समाधि के कभी हो नहीं सकती। आदि गुरु योग को वेदान्त से भिन्न कभी नहीं मानते। अपने विवेक चूड़ामणि नामक ग्रन्थ में वे कहते हैं "जो लोग श्रोत्रादि समस्त इन्द्रिय वर्ग तथा चित्त और अहंकार इन बाह्य वस्तुओं को आत्मा में लीन करके समाधि में स्थित होते हैं वे ही संसार बन्धन से मुक्त होते है। जो केवल परोक्ष ब्रह्म ज्ञान की बातें बनाते हैं वे कभी मुक्त नहीं हो सकते।" इसी ग्रन्थ के समाधि निरूपण नामक प्रकरण में उन्होंने इस बात को स्पष्ट रूप से कह दिया है कि अज्ञान ग्रन्थि का भेदन निर्विकल्प समाधि में स्थित होकर ही हो सकता है।

'योगश्चित्त वृत्ति निरोधः' चित्त वृत्तियों का निरोध ही योग कहलाता है। इसलिये हम से कोई कर्म ही न बने इसके लिये ही हमें सारी साधनायें करनी पड़ रही हैं। वेदान्त मानता है कि ब्रह्मात्मैकत्वज्ञान से ही जीव की मुक्ति होती है। इस प्रकार के **'ब्रह्मात्मैकत्व'** का ज्ञान करने के लिये ही समाधि की आवश्यकता है। त्रिगुणात्मिका माया के कारण जीव को आत्म विस्मृति हो जाती है। जिस प्रकार सेवाल (काई) को जल के ऊपर से हटा देने पर वह फिर क्षण भर में ही जल को ढँक देता है इसी प्रकार से माया जीव के बुद्धि एवं मन को अपने प्रभाव से ढक लेती है। यही कारण है कि साधक को लम्बे समय तक समाधि के अभ्यास की आवश्यकता पड़ती है। जंगलों में योगी लोग कन्दराओं में बैठकर इसीलिये साधनारत रहते हैं।

चित्त वृत्तियों के निरोध के लिये गीता में भगवान ने तथा योग दर्शन में महर्षि पतञ्जलि देव ने दो प्रमुख उपाय बताये हैं। वे हैं अभ्यास और वैराग्य। बार–बार चित्त को अपने लक्ष्य में लगाने का नाम ही अभ्यास है और योग रूपी गाड़ी का दूसरा पहिया है वैराग्य। जब तक चित्त वैराग्ययुक्त नहीं होता अपने लक्ष्य में स्थिर नहीं हो सकता। जाग्रत सामान्य अवस्था में भी असत् पदार्थों के सारहीनता का बोध रखते हुये उनमें चित्त को न लगाना ही वैराग्य है। इसलिये ध्यान से उठे हुये–व्युत्थानकाल में वेदान्त ज्ञान का आश्रय लेकर अपने मन को संयम में रखने का प्रयास करना चाहिये।

संशय ही अनर्थों का मूल है। रस्सी में साँप का भ्रम हो जाता है। किन्तु प्रकाश से उस भ्रम का निवारण हो जाता है। भ्रम का नाम संशय भी है। योगज ऋतम्भरा प्रज्ञा का ज्ञान समस्त संशयों का नाश करने वाला है। गीता में भगवान् ने 'योगसंछिन्न संशयम्' कहकर इस बात को स्पष्ट कर दिया है कि भ्रम व संशय का नाश योग से ही होता है।

योग एवं वेदान्त भले ही भिन्न–भिन्न दर्शन के रूप में हैं। किन्तु ये साधक को एक ही लक्ष्य तक पहुँचाने के उपाय हैं। साधक को अन्तःकरण की शुद्धि एवं अपनी वृत्ति की स्थिरता के लिये योग व वेदान्त दोनों का आश्रय लेना चाहिये। तभी वह अपने लक्ष्य की ओर शीघ्रता से अग्रसित हो सकता है।

❊❊❊

सदाचार की रक्षा यत्नपूर्वक करनी चाहिये; धन तो और जाता रहता है। धन क्षीण हो जाने पर भी सदाचारी मनुष्य क्षीण नहीं माना जाता; किन्तु जो सदाचार से भ्रष्ट हो गया, उसे तो नष्ट ही समझना चाहिये।

ध्यान कैसे करें ?

डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी, रामपुर

आज का युग भौतिकता का युग है। जीवन की रफ्तार तेज है और आपाधापी मची हुई है। ऐसे में तनाव और अन्य अनेक मानसिक बीमारियों का जन्म हो रहा है। नींद न आना सामान्य बात हो गई है। ट्रैंक्वलाइजर और दर्द निवारक गोलियों की माँग बढ़ रही है। वैसे भारतीय योग दर्शन में तन और मन स्वस्थ रखने के लिये अनेक साधन और उपचार बताये गये हैं, परन्तु विदेशी विद्वानों द्वारा इनकी महत्ता स्वीकार किये जाने के उपरान्त योगा (योग नहीं) के नाम से विख्यात अपनी ही वस्तु आयातित होकर आने पर हमने उसके महत्व को स्वीकार कर लिया है।

चूँकि ध्यान की महत्ता पर इतना लिखा जा चुका है कि उस पर लिखना पुनरावृत्ति होगी। अतः इस लेख की केन्द्रीय विषयवस्तु (सेंट्रल थीम) ध्यान की विधि अथवा प्रक्रिया है तथा उन छोटी--मोटी बाधाओं का वर्णन भी जिनके कारण इस प्रक्रिया में व्यवधान और अन्तराल आता है अथवा यह शुभ और लाभप्रद कार्य छूट जाता है। साथ ही प्रत्येक व्यक्ति अच्छे गुरु के संपर्क में नहीं आ पाता। अतः इस लेख का उद्देश्य उन व्यक्तियों तक अपनी बात पहुँचाना है।

सर्वप्रथम यह बात जान लेनी होगी कि जो कुछ करना है आप ही को करना है। गुरुदेव, लेख अथवा दूरदर्शन आपको प्रक्रिया बता सकते हैं, निर्देशन दे सकते हैं। अच्छे कामों को प्रारंभ करने और बुरे कामों को छोड़ने में "आज" का बहुत महत्व है। हम कल से अच्छा काम करने और बुरा काम छोड़ने की इच्छा रखते हैं, परन्तु किसी न किसी बहाने कल नहीं आता। अतः उठें और "आज" ही से यह शुभ कार्य प्रारम्भ कर दें। रामचरित मानस में प्रसंग आता है कि जब भगवान श्री राम वनवास से लौटकर आये तो उनके राज्याभिषेक के मुहूर्त शोधन की चर्चा हुई। वहाँ एक चौपाई है--"**सुदिन सुमंगल है तबहि, जब राम होंय युवराज**" अतः शुभदिन वही है जिस दिन आप ध्यान में बैठना प्रारम्भ कर दें। चूँकि ध्यान, मनोवैज्ञानिक दृष्टि से, एक आदत होगी--एक नियम होगा अतः उसके निर्माण को कुछ पूर्व भूमिकायें भी होंगी जो शारीरिक और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सहायक होंगी। यदि आप इच्छुक हैं कि वह शुभ कार्य करेंगे तो प्रतिदिन रात्रि में अगले दिन की तैयारी (कहाँ क्या रखा है) कर लें ताकि सुबह हड़बड़ी और तद्जनित तनाव न हो। सुबह नैत्यिक कर्मों से निवृत्त होकर अपने इष्टदेव, गुरुदेव या किसी प्रख्यात संत के चित्र का पूजन कीजिए, दीपक और धूप जलाइये। प्रश्न उठता है कि इनकी क्या आवश्यकता है ? मन चंचल है इसे एकदम नहीं मोड़ा जा सकता है। अतः चित्र पूजन का महत्व है। रोली चंदन लगाने, श्लोक--भजन पढ़ने से आपके मन का झुकाव बाहरी पदार्थों से हटकर

उत्तर को उन्मुख होगा। ध्यान केन्द्रित करने के लिए प्रारम्भ में किसी वस्तु (आब्जेक्ट) की आवश्यकता होती है। अतः चित्र। पुनः प्रश्न उठता है कि भगवान या संत का चित्र क्यों ? यदि आप शत्रु या दुष्ट व्यक्ति का चित्र लगा लेंगे और उस पर ध्यान केन्द्रित करेंगे तो आर्त और रौद्र विचार आयेंगे जो सुख के बजाय दुःख देंगे। ज्ञानार्णव २३, पृष्ठ ४१५, श्लोक १८–१९ में कहा गया है –

आर्त् रौद्र विकल्पेन, दुर्ध्यान देहिनां द्विधा।
द्विधा प्रशस्त मप्युक्तं, धर्म शुक्ल विकल्पतः।। १८
स्यातां तत्रार्तरौद्रे द्वे दुर्ध्यानेऽत्यन्त दुःखदे।
धर्म शुक्ले ततोऽन्ये, द्वे जन्म सम्बन्ध शुद्धि दे।। १९

अतः आवश्यक है कि चित्र किसी उच्च गुण वाले व्यक्ति का हो अथवा भोला व्यक्ति जिसे आप प्रेम करते हो। पूज्य गुरुदेव कहा करते थे कि घर के छोटे बच्चे का प्रारम्भ में, ध्यान किया जा सकता है। पुष्प और अगरबत्ती सुगंधित वातावरण प्रदान कर ध्यान में सहायक होती। दीपक की ज्योति (लौ) ध्यान केन्द्रित करने में सहायता प्रदान करेगी।

इन सबके उपरान्त कपड़े या ऊन के आसन पर बैठिये। आसन का अर्थ है–आस न, अर्थात् जहाँ प्रभु प्राप्ति के सिवाय कोई आस यानी इच्छा न हो। धरती पर बैठने से अर्जित शक्ति भूमि में समा जाती है। अतः कपड़े आदि के आसन पर बैठना उचित होगा। तदुपरान्त रीढ़ की **हड्डी** सीधी करके बैठना होगा। इसके लिए सिद्धासन, पद्मासन या सुखासन चुन लें। आसन सहज और सुखकर होना चाहिए। गीता में कहा गया है–

समं काय शिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चावलोकयन।। (६/१३)

अर्थात्–काया, सिर और गर्दन को समान और अचल धारण किये हुए दृढ़ होकर अपनी नासिका के अग्रभाग को देखें तथा अन्य दिशाओं को न देखते हुए ध्यान करें। बैठते समय दाहिना हाथ गोद में और उसके ऊपर बाँये हाथ की हथेली रखे। फिर तीन बार प्राणायाम करे अर्थात् दाहिने स्वर से सांस खींचकर थोड़ा रोके और बांये से छोड़े और बांये से खींचकर दाहिने से छोड़े। यह एक बार प्राणायाम हुआ। अथवा विपरीत क्रम (नासिका) से कर ले। इससे मन स्थिर होने में सहायता होगी। यदि इसके उपरान्त दो मिनट के लिये कानों में तर्जनी डालकर आँखें बंद कर ली जायें तो मन बहुत शीघ्र एकाग्र होता है। थोड़ी देर सीधे बैठने पर नासिका के दोनों स्वर चलने लगेंगे। समझ लें कि मंत्र जप का यही सर्वश्रेष्ठ समय है। अगर न चले हों तो उसी प्रकार बैठे रहकर नासिका का अग्रभाग १५–२० सैकिण्ड के लिए अंगूठे और तर्जनी से दाब लें।

ध्यान का अर्थ है किसी वस्तु विशेष पर चेतना या मन को केन्द्रित करना। पूज्य गुरुदेव कहा करते थे–"**यत्र मनोलीयते तत्र प्राणो लीयते, यत्र प्राणो लीयते तत्र**

मनोलीयते'' अतः खुली आँखों से एकटक आराध्य का चित्र देखें और मंत्र जाप भी करें। फिर थोड़ी देर को आँखे बंद करके उस चित्र की छवि या प्रतिमा (इमेज) देखने का प्रयास करें। ध्यान हटने पर पुनः आँखें खोलकर चित्र देखें। बहुत संभव है कि इस बीच तुम्हें अपनी अच्छी बुरी पूर्व की घटनायें याद आयें, तो दुखी या परेशान न हों। उन्हें अटके से भूलने या दबाने का प्रयास भी न करें। साक्षी भाव से मन से निकलने वाली भावनाओं को पुनः स्मरण होने के बाद निकल जाने दें। इसी प्रकार क्रमशः **मंत्र जाप और (अथवा) चित्र की ओर एकाग्रता का प्रयास ही ध्यान है।**

पहिले दिन ५ मिनट से शुरू करें और प्रति सप्ताह ५ मिनट बढ़ाते हुए कम से कम ३० मिनट तक प्रतिदिन ले जाय। घंटा दो घंटा करना हो तो बहुत सबेरे उठकर करें ताकि घर और नौकरी के दायित्व में बाधा न आवे और आपकी उपासना को लेकर घर में कलह न हो। विद्यार्थी अपने अध्ययन की कीमत पर ध्यान को अधिक समय न दें। इस प्रकार आप उपासना के सच्चे अर्थ को प्राप्त कर लेंगे। उप का अर्थ है—''समीप'' और आसन का अर्थ है—'बैठना'। अर्थात परमपिता के समीप बैठना।

संक्षेप में ध्यान की प्रगति के लिए निम्नस्थ निर्देशों का भी पालन करें :-

(१) नियमितता :- ध्यान में प्रतिदिन बैठें। न बैठने देने के लिए अनेक काम और बहाने याद आयेंगे। परन्तु सोच लें, जैसा कि सुधांशु जी महाराज कहते हैं, कि उस परम सत्ता को प्रति घंटा १ मिनट के हिसाब से प्रतिदिन २४ मिनट अवश्य दें।

(२) एक ही समय :- ध्यान में बैठने का एक ही समय हो। पाँच दस मिनट का हेरफेर भी न हो तो अच्छा है क्योंकि चिंतन द्वारा ही लहरें (वेव्स) २४ घंटे के अन्तराल से पुनः गुजरती है। अतः मन उस समय ध्यान की अनुकूल स्थिति में होता है। रात में ध्यान करने से अन्य पुरुषों की आपके प्रति स्नेह और (अथवा) द्वेषमय चिंतन धारायें मन में उचाट पैदा नहीं करतीं—ऐसा पूज्यपाद गुरुदेव योगिराज चन्द्रमोहन जी का विचार है।

(३) स्थान :- इस संदर्भ में दो बातें विचारणीय हैं—

प्रथम— स्थान एक हो। बार—बार जगह बदलने से एकाग्रता में कठिनाई होती है। दूसरी बात—स्थान ''एकान्ते नदी तीरे अथवा शून्य मंदिरे (स्थल)'' हो। ज्ञानार्णव के श्लोक—२२ में कहा गया है—

विकीर्यते मनः सद्यः स्थान दोषेन देहिनाम्
तदैव स्वस्थतां धत्ते स्थानमासाद्य बन्धुरम्।।

अर्थात् स्थान के दोष से प्राणियों का मन शीघ्र विकार को प्राप्त होता है तथा वही मन रमणीक स्थान पाकर स्वस्थता को धारण करता है।

(४) एक आसन :- एक आसन भी ध्यान में सहायक होता है। ज्ञानार्णव पर्व २६ पृ. ४४७ श्लोक १० में कहा गया है—

पर्यकमर्धपर्यकं वज्रं वीरासनं तथा।
सुखार विन्द पूर्वेच कार्योत्सर्गश्च सम्मतः।।

अर्थात् पर्यक, अर्धपर्यक, वज्रासन, वीरासन, सुखासन और पद्मासन ध्यान के लिए अभीष्ट माने गये हैं अतः कोई एक आसन चुन लें।

(५) दिशा :- साधक को ध्यान के समय पूर्व दिशा अथवा उत्तराभिमुख होकर बैठना चाहिए ऐसा ज्ञानार्णव में निर्देशित है।

(६) ध्यान की आंतरिक दशायें :- ज्ञानार्णव सर्ग २० श्लोक १० में कहा गया है कि उत्साह, निश्चय, धैर्य, संतोष और त्याग से योगसिद्धि होती है।

(७) एक देव (इष्ट) :- चेतना के केन्द्रीकरण (कन्सेन्ट्रेशन ऑफ कांशसनेस) को ध्यान कहते हैं बार-बार केन्द्र बदलने से चित्त की स्थिरता में बाधा आती है।

(८) एक मंत्र :- ध्यान कार्य शुरू करने से पूर्व गुरुदेव द्वारा निर्देशित अथवा जिस मंत्र में आपकी आस्था और विश्वास हो केवल उसी का जाप करें। आस्था और विश्वास वस्तु में रुचि जाग्रत करते हैं।

(९) व्यावसायिक मनोवृत्ति का अभाव :- व्यावसायिक मनोवृत्ति का अर्थ है-शीघ्र लाभ पाने की इच्छा अथवा चिन्ता। हर वस्तु फलने में समय लगता है। आप दो चार दिन में ईश्वर दर्शन अथवा बुद्धत्व प्राप्त नहीं कर लेंगे। चिंता ध्यान में बाधा बनेगी। अतः दोनों समय भोजन की तरह दोनों समय ध्यान की आदत डालें। इसे दिनचर्या का भाग मान लें। दिन गुजरने के साथ-साथ साधनापक्ष दृढ़ होता जावेगा।

सम्प्रति यही नौ सूत्र ध्यान के लिए पर्याप्त है। जिस तरह माता-पिता बच्चे का हाथ पकड़ कर चलना सिखा देते हैं, विश्वास रखें आगे का मार्ग दर्शन ध्यान में श्री गुरुदेव कर देंगे। बस शुरू तो कर दें।

❁ ❁ ❁

शोक संदेश

अपार दुःख है कि सहारनपुर निवासी श्री वेदपाल सैनी की २६ वर्षीय पुत्री का गत १२ अक्टूबर को निधन हो गया। **सिद्धयोग** परिवार दिवंगत आत्मा की शांति और शोकसंतप्त परिजनों को दुःख के इन क्षणों में धैर्य धारण करने की शक्ति देने की प्रभु से प्रार्थना करता है।

जीवनयापन की श्रेष्ठतम् पद्धति भोग नहीं योग है

ब्रह्मचारी ओमप्रकाश, लखनऊ

संसार में मानवजीवन यापन की मुख्यतः दो ही दिशा है–एक योग की तथा दूसरी भोग की। मानव जीवन का लक्ष्य भोग नहीं योग है। योग जीवन का स्वाभाविक व प्राकृतिक ईश्वरी विधान है। भोग वास्तविक जीवन नहीं है भोग रोग है, बुढ़ापा है और मृत्यु है। इसके विपरीत योग स्वास्थ्य है, अजरत्व है और अमरत्व है। चित्त की वृत्तियों को संसार के विषय भोगों में भटकने से रोककर अन्तर्मुख बनाना इसी को योग कहा है। चित्त की वृत्तियों के निरोध अर्थात् रुक जाने से परदृष्टा (आत्मा) अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाता है। आत्मा का अपना शुद्ध स्वरूप दृष्टिगोचर होने लगता है; चित्त वृत्ति निरोध से पूर्व दृष्टा (आत्मा) चित्त के समान रूप वाला मालूम होता है अर्थात् जीवात्मा अपने चित्त के भावों के अनुरूप ही अपने को जानता एवं मानता है। योगाचार्य भगवान श्री पातंजलि जी ने **'योगश्चित्त वृत्ति निरोधः'** कहकर योग शब्द की अभिव्यक्ति की है। निरोध शब्द का अर्थ योग दर्शन में समाधि बतलाया है और समाधि शब्द का अर्थ उपनिषदों में **''समाधि समतावस्था जीवात्मनः परमात्मनः''** अर्थात् जीवात्मा परमात्मा की समतावस्था का नाम समाधि है। मानव जीवन का सारा खेल चित्त वृत्तियों का ही है और इनका निरोध ही योग की सच्ची साधना है। मनुष्य की शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियों के विकास के लिए महर्षि पातञ्जलि जी ने अष्टांग योग यानि योग के आठ सिद्धान्तों–यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारण, ध्यान और समाधि का निरूपण किया है। संसार के सभी धर्मों का स्वरूप योग के यम–नियम पर ही आधारित है। यम का अर्थ है–सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय और अपरिग्रह तथा नियम का अर्थ है शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान। संसार के सभी धर्माचार्यों के उपदेश तथा उनके मूल सिद्धान्त योग के यम–नियम के अन्तर्गत ही आ जाते हैं, इसलिए संसार का प्रत्येक प्राणी इस कल्याणकारी योग साधना का अधिकारी है फिर वह चाहे किसी भी जाति, देश तथा मजहब का मानने वाला हो, अष्टांग योग के यम के अन्तर्गत सदाचार सम्बन्धी नियमों का अध्ययन है जिनके द्वारा सामान्य रूप से मानव के व्यक्तित्व का गठन होता है।

मनुष्य के व्यवहार में हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार और परिग्रह जैसी क्रियाएं जिनसे मानव के शरीर में विघटनकारी रासायनिक परिवर्तन होते हैं जिसके परिणाम स्वरूप मनुष्य का शरीर एवं मन विकारी होकर अनेक प्रकार के रोगों का कारण बनता है। अष्टांग योग के अंगों में नियम भी मानव जीवन के लिए महत्त्वपूर्ण अंग है जिसके अनुसार प्रत्येक मनुष्य का शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान में निमग्न रहने का प्रविधान किया गया है। मनुष्य के शरीर को स्वस्थ्य एवं सबल बनाने के लिए व यम–नियमों के बाद आसनों

का अभ्यास बताया है। जिसके अभ्यास से मनुष्य पूर्ण स्वस्थ एवं शक्ति सम्पन्न बनता है। आसन के बाद प्राणायाम अष्टांग योग का वह अंग है जिसके अभ्यास से शरीर की सभी अशुद्धियों का नाश होकर शरीर पूर्णतः निर्मल हो जाता है। प्राण ही मनुष्य का जीवन है प्राणायाम की साधना से मन का निरोध होता है और मनुष्य प्राणजयी होकर अद्भुत शक्तियों का मालिक हो जाता है। प्राणायाम के बाद प्रत्याहार इन्द्रियों की गुलामी से छुड़ाकर इन्द्रियों का मालिक बनाने की साधना है। प्रत्याहार के बाद धारणा के द्वारा मनुष्य अपने मन को अनावश्यक चिन्तन से हटाकर अपने अभीष्ट कार्य की सिद्धि के लिए मन को एकाग्र करके एक लक्ष्य में लगा देना हैं धारणा द्वारा स्थिर किया हुआ लक्ष्य ध्यान में जाग्रत हो उठता है। यही धारणा की सिद्धि है। धारणा में मन का बराबर तेल धारावत लगे रहना ही ध्यान है, समाधि अष्टांग योग का अन्तिम सोपान है। जीवात्मा और परमात्मा की समान स्थिति को समाधि कहते हैं। योग का लक्ष्य समाधि ही है। इसलिए समाधि को ही योग कहते हैं। इस अष्टांग योग के अभ्यास के द्वारा मनुष्य अपने शरीर, मन, बुद्धि और चित्त को अधिक सूक्ष्म, परिष्कृत, शक्तिशाली तथा अत्यधिक उपयोगी बना सकता है। इस अष्टांग योग के अभ्यास से ही मनुष्य अपने शरीर की रचना, कार्य, नियन्त्रण तथा उसका ठीक–ठाक उपयोग करना सीख जाता है। आज का मानव जिस भोगमय जीवन के पीछे पागल है जिन वासनाओं के पीछे दौड़ रहा है उसी का परिणाम है कि वह शारीरिक व्याधियों से परेशान व दुःखी है। सारी उपलब्धियों के बावजूद भी आज जगत की मानवता दुःख दर्द से कराह रही है; आहार–विहार, जागरण, निद्रा, उठना–बैठना, खान–पान किसी चर्या में इनका कोई नियम नहीं है। विषय भोगी मनुष्य भोगों को अमर्यादित रूप से भोगता हुआ अपने शरीर को रोगी बनाकर शीघ्र ही मृत्यु के मुंह में चला जाता है। आधुनिक युग के मानव ने अपने जीवन को योग से अलग करके रोग, शोक, दुःख विपत्ति एवं नैराश्यता को निमन्त्रण दिया है, इतने पर भी इस गलती को अभी समझ नहीं पा रहा है। वस्तुतः योगियों के बताए हुए मार्ग पर न चलकर निश्चित रूप से मानव ने बहुत बड़ी भूल की है। अपनी इस भूल का दण्ड उसे भोगना ही होगा और भोग भी रहा है। यदि मानव समाज से योग को अलग कर दिया जाय तो सिर्फ मानव के पास भोग ही रह जायेगा। मानव केवल मनुष्य रूप में पशुओं का एक समूह ही रह जायेगा।

आज अधिकांश लोगों का कहना है कि योग तो योगियों, त्यागियों तथा सन्यासियों के लिए है। गृहस्थियों के लिए नहीं, इस प्रकार की बातें नासमझ लोग ही करते हैं। योग सभी के लिए है। योग भोगमय संसार से विरक्ति नहीं; बल्कि योग कीचड़ में कमलवत् रहने की अद्भुत कला का नाम है। योग घर छोड़ने का आदेश नहीं है बल्कि यह सारे विश्व को एक कुटुम्ब की तरह ग्रहण करने का सन्देश है। योग का अभ्यासी योग की साधना से अपना भला करके दुनिया का भला कर सकता है। यथार्थ में एक योगी ही देश का

सच्चा सेवक होता है। सभी के कल्याण स्वस्थ और सुखी रहने की कामना व चेष्टा ही योग व योग का लक्ष्य है। संसार में सर्वश्रेष्ठ जीवन योगी का तथा दूसरे नम्बर पर भोगी का तथा तीसरे नम्बर पर रोगी का होता है। अतः श्रेष्ठ जीवन यापन करने के लिए आप सब योगी बनें अपने आन्तरिक परिशोधन के लिए अपनी प्रतिभा को विकसित करने के लिए अपने आत्मिक उत्थान व आत्मानन्द की प्राप्ति के लिए योगाभ्यास करें। यह योग मानव जीवन का महाविज्ञान है। तुम निरे भोगी बनकर रोग–शोक के कारागार में ही पड़े रहोगे। देह की कैद से मुक्ति तुम योगी बनकर ही पा सकोगे। योग आत्मा का महाविज्ञान है तथा जीवन की साधना है। योग केवल आसन तक ही सीमित नहीं है, न आसन सिखाने वाले को योगी ही कहा जा सकता है। योग केवल ईश्वर प्राप्ति का मार्ग ही नहीं बताता बल्कि अष्टांग योग की विधि बता कर जीवात्मा को परमात्मा के साथ जोड़कर एक कर देता है। आज हमारा भारतीय योग विदेश हो आने के बाद **'योगा'** शब्द से जाना जाता है। योग विद्या परा विद्या है, ब्रह्म विद्या है; यही विद्या इस वाक्य के अनुरूप सिद्ध हुई है **''सा विद्या या विमुक्तये''** यह वही विद्या है जो जीव को सभी प्रकार के बन्धनों से मुक्ति दिलाकर मोक्ष प्राप्त कराती है जिस प्रकार लौकिक शिक्षा का एक कोर्स होता है। उसी प्रकार अष्टांग योग का निश्चित कोर्स होता है जिसके द्वारा साधक एक निश्चित समय में आत्म परमात्म का साक्षात्कार प्राप्त कर सकता है। योग एक नकद धर्म है जिसे कटिबद्ध होकर आज ही शुरू करो और आज ही फल प्राप्त करो अन्य धर्मों की तरह यह परलोक में मिलने वाला उधार सौदा नहीं।

जिसका जी चाहे वह योग करके देख ले। आज की शिक्षा योग के बिना अधूरी है तथा अशान्ति दायिनी है। शिक्षा का समारम्भ योग ध्यान व आसन से होना चाहिए। शिक्षा में योगासन व ध्यान पद्धति का समावेश आवश्यक रूप से होना चाहिए जिससे विद्यार्थियों की मानसिक शक्ति का पूर्ण सदुपयोग किया जा सके। छात्रों में विचार के स्रोत को ध्यान के द्वारा जगाकर शिक्षा को साकार एवं सोद्देश्य बनाना चाहिए।

योग का प्रारम्भ मन की एकाग्रता से होता है। योग मानव जीवन की सभी समस्याओं का उचित तथा स्थाई समाधान प्रस्तुत करता है। योगासनों के द्वारा शरीर और मन को पूर्ण विश्राम प्रदान कर मांस पेशियों के तनावों को दूर करके समस्त मांस पेशियों को पूर्ण विराम पहुँचाता है। इसके बाद प्राणायाम के द्वारा मस्तिष्क तथा फेफड़ों को प्रचुर मात्रा में शुद्ध प्राणवायु मिलती है। जिससे मानसिक तनाव शीघ्र दूर करने तथा जीवन के उतार चढ़ावों का सफलता पूर्वक सामना करने और अपने मन को सशक्त बनाने का उपाय योग ध्यान है। ध्यान मनुष्य के निकट उसके यथार्थ स्वरूप को प्रकाशित करता है। अन्तर्निहित अपनी आत्मा का ध्यान करना ही परमात्मा की सच्ची पूजा है। प्रत्येक व्यक्ति को हृदय ज्योति स्वरूप अपनी आत्मा का ही ध्यान करना चाहिए क्योंकि वह परमात्मा की आत्म रूप

से प्रत्येक प्राणी के अन्दर विराजमान है।

मन की एकाग्रता के बिना भोगी व्यक्तियों को सांसारिक भोगों में भी सुख-शांति नही मिलेगी। यदि तुम संसार में योगी बनकर जीओगे तो तुम निश्चित ही अपना तथा दूसरों का कल्याण कर सकते हो अन्यथा यह नियन्त्रण से बाहर तुम्हारा मन तुमको बन्दर की भांति संसार के विषय भोगों में इधर से उधर भटकता रहेगा। विषय भोगी होने के नाते ही तुम्हारे आवेग विक्षेप तथा संकल्प-विकल्प तुम्हें तुम्हारे आत्मा के आनन्द से वंचित किए हुए है। अगर तुम अपने अन्दर के आनन्द स्रोत को प्रवाहित करना चाहते हो और साथ ही अपने अन्दर के छिपे हुए खजाने के मालिक बनना चाहते हो तो ध्यान दीप को प्रकाशित करो मन को वश में करके उसे एकाग्र करो। ध्यान का दीपक लेकर उसके प्रकाश में अपने अन्दर अपने आप को खोजो। और यह सब तो तुम योगी बनकर ही कर सकोगे।

योग के अभ्यास से तीन लाभ योग साधना करने वाले को प्रत्यक्ष में होते हैं। प्रथम शारीरिक स्वास्थ्य की प्राप्ति, द्वितीय मानसिक शान्ति व शक्ति का विकास तथा तृतीय आत्म विकास का आत्म ज्ञान। योग का उद्देश्य प्रकृति के बन्धन तथा पदार्थ के मायावी आकर्षणों से व्यक्ति को मुक्त करके उसे परम स्वतन्त्र या कैवल्य की अनुभूति कराना है। योग ध्यान के द्वारा मनुष्य को अपने वास्तविक स्वरूप व शक्ति का ज्ञान होता है। योग से प्राप्त ज्ञान ही सत्य एवं पूर्ण ज्ञान है। अतः अर्जुन की भांति मोह-शोक के नाश के लिए योगेश्वर श्री कृष्ण की आज्ञा व आदेश मानकर योगी बनो। **"तस्माद्योगी भवार्जुनः"**

❊ ❊ ❊

ज्ञानोदयात्पुरारब्धं कर्म ज्ञानान्न नश्यति।
अदत्वा स्वफलं लक्ष्यमुद्दिश्योत्सृष्टबाणवत्।।
व्याघ्रबुद्ध्या विनिर्मुक्तो बाणः पश्चात्तु गोमतौ।
न तिष्ठति छिनत्त्येव लक्ष्यं वेगेन निर्भरम्।।

लक्ष्य की ओर छोड़ दिये गये बाण के समान ज्ञान के उदय से पूर्व ही आरम्भ किया हुआ कर्म अपना फल दिये बिना ज्ञान से नष्ट नहीं होता, जैसे व्याघ्र समझकर गौ की ओर छोड़ा हुआ बाण पीछे उसको गौ जान लेने पर भी बीच में नहीं रोका जा सकता, वह तुरन्त अपने लक्ष्य को बेध ही देता है।

सुषुम्ना और कुण्डलिनी

स्वामी इन्द्रानन्द उदासीन 'मौनी'

निगम और आगम यानी वेद और तंत्र, सामान्यतया इन दो ही रूपों में हमें हमारा प्राचीन आर्य साहित्य उपलब्ध है। इनमें भी वेद और वैदिक ज्ञान विज्ञान का ही स्वतः प्रामाण्य, शिष्ट समाज में स्वीकृत है। वैदिक ज्ञान अपौरुषेय एवं परमात्मा का निःश्वास रूप है। यह देशकाल निरपेक्ष प्राणीमात्र के कल्याण का साधक है। यह ज्ञान सृष्टि के प्रारम्भ में अयोनिजरूप से उत्पन्न, उन शुद्धान्तकरण ऋषियों के पवित्र हृदय में स्वतः स्फूर्त हुआ, जिनके द्वारा ईश्वर को प्राणिमात्र पर अनुग्रह करना था। इसके अलावा तंत्रागम आदि का ज्ञान और साहित्य कालान्तर में ज्ञान विज्ञान में निष्णात विज्ञ सत्पुरुषों ने देशकाल परिस्थिति के अनुरूप तैयार किया, और यही कारण है कि उसमें मानव सुलभ विप्रलिप्सा करणा पाटव आदि अनेक दोष रहते ही हैं। तंत्रागम ज्ञान और तत्सम्बन्धित साहित्य यद्यपि पूर्णतः वेद बाह्य नहीं है, परन्तु फिर भी वह स्वतः प्रमाणित न माना जाकर परतः प्रामाणिक माना गया है यानी उसकी वे बातें जो वेदानुवर्तिनी हैं वे ही ग्राह्य व मान्य हैं। सुषुम्ना या सुषुम्णा शब्द और अर्थ वैदिक है जबकि कुण्डलिनी शब्द तांत्रिक। वैदिक साहित्य में सुषुम्ना सूर्य द्वार, ब्रह्मद्वार, ब्रह्मरन्ध्र, मूर्धा आदि शब्द उस शरीरस्थ अत्यन्त सूक्ष्म अति संवेदनशील और सत्व विशिष्ट उस मार्ग नाड़ी या गति विशेष के अर्थ में है, जिसके द्वारा जीव अपने सत्स्वरूप एवं परमार्थ को प्राप्त होकर कृतकार्य या कृतकृत्य बनता है, यानी मोक्ष लाभ करता है। इस विषय की चर्चा हमने अपने पूर्व के दो लेखों में अपेक्षाकृत विस्तार से की हुई है। कुण्डलिनी शब्द भी तंत्रागम में करीब–करीब इसी अर्थ में उद्धृत है, यानी वह शक्ति जो उद्‌बुद्ध होकर जीव को शिव से मिला देती है। तंत्रों में कुण्डलिनी शब्द की और उसकी महत्ता की भरमार होने पर भी अर्थरूप से उसका कोई स्पष्ट और निश्चित निर्देश नहीं है। कहीं उसे नाड़ी विशेष कहा है तो कहीं शक्ति विशेष। कहीं उसे त्रिपुर सुन्दरी कहा है, तो कहीं उन्नत और उठे हुए पीन, कुचधरा षोडशवर्षीय बाला।

'ध्मायते कुण्डलिनी देवीं इष्टदेव स्वरूपिणीम्।
सदाषोडसवर्षीया पीनोन्नत पयोधराम्'।।

कहीं उसे साढ़े तीन लपेटों वाली और अपनी पूंछ से मूलाधार को द्वार बन्द किये हुए विषधरा नागिन कहा है तो कहीं तेजपुंज विद्युत धारा आदि–आदि। ठीक जिस प्रकार कुण्डलिनी पदार्थ का तंत्र में कोई निश्चय नहीं, इसी प्रकार इसके नामों का भी अनिश्चय सा ही देख पड़ता है। ऐसा लगता है जैसे इसके लिए प्रयुक्त होने वाले सभी नाम प्रीति से, छन्दानुरोध से या मात्र उत्प्रेक्षा पूर्वक ही प्रयुक्त हुये हैं जैसे–कुण्डली, नागिनी, भुजंगांगना, बाल विधवा, तापस्विनी, कुटिलांगी, ईश्वरी, अरुन्धती, बालरण्डा आदि।

जैसा कि हमने ऊपर कहा है–कि वेद ईश्वरी अनुकम्पा और ईश्वरीय वाक् है वैसे ही तन्त्र मानव बुद्धि का चमत्कार है। तंत्र या तो वैदिक ज्ञान का ही आडम्बर पूर्ण पिष्ट प्रेषण मात्र है अथवा दुरूह विस्तार मात्र। तंत्रागम की बड़ी दुरूहता यह भी है कि पारिभाषिक शब्दों का जखीरा है। तंत्रागम और खासकर कुण्डलिनी सम्बन्धी वाममार्ग का प्राकट्य ऐतिहासिक दृष्टि से ईसा की छठी शताब्दी पश्चात् माना गया है। इसके पहले के किसी वैदिक सत्साहित्य में वेद, उपनिषद, गीता, रामायण, भागवत, महाभारत अथवा वैदिक दार्शनिक सूत्र ग्रंथों में यहाँ तक कि प्राचीन जैन, बौद्ध धर्म ग्रन्थों तक में भी कुण्डलिनी शब्द का दर्शन नहीं है। सम्पूर्ण तंत्रागम शक्ति को ही उपास्य रूप से मानता है। अपनी प्रसिद्ध टीका सौन्दर्य लहरी की व्याख्या में लक्ष्मी धर ने लिखा है कि सभी तंत्रों में वक्ता शिव और श्रोता पार्वती हैं। ये सभी जगत के विनाश कारक और वैदिक मार्ग से दूरस्थ हैं। म. म. उपाध्याय म. हरि प्रसाद जी ने भी तंत्र और तान्त्रिक साधना को अवैदिक कहा है। भट्टोजी दीक्षित ने तंत्र के प्रामाण्य का खण्डन करके एक ग्रंथ की रचना की है। उनके गुरु अप्पय दीक्षित ने भी त्रिपुरा महोपनिषदीय व्याख्या में कौल मार्ग पर कटाक्ष किया है। तुलसी ने भी 'कौल कामबस कृपिन विमूढ़' और तजि श्रुति पंथ बाम मग चलहिं' कटाक्ष तंत्र पर किये हैं। नाथ, शाक्त, भैरव, कौल, कापालिक, शैव और अघोर आदि सभी साम्प्रदायिक साधनाओं की मूल भित्ति रूप है कुण्डलिनी शक्ति, उस पर शक्ति के जागरण की विधि–सबकी अलग–अलग है।

पिण्ड और ब्रह्माण्ड–पिण्ड ब्रह्माण्ड का प्रतिरूप (Modal) या संक्षिप्त संस्करण है, अतः उसे ही प्रधान पिण्ड मानकर शास्त्रों में ब्रह्माण्ड और पिण्ड की तुलना की गई है। ग्रीक दार्शनिकों ने भी विश्व और मानव की साधर्मिता पर गहन अध्ययन किया है और माना है कि दोनों ही एक सम्पूर्ण जगत हैं। उन्होंने विश्व को Macrocozm और मानव को Microcozm कहा है। वेद में अनेकशः पिण्ड ब्रह्माण्ड के परस्पर घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होने की बात कही गई है–

सूर्यो मे चक्षुर्वातः प्राणोन्तरिक्षमात्मा पृथिवी शरीरम्

अर्थात सूर्य मेरा नेत्र है, वायु मेरा प्राण है, अन्तरिक्ष यानी हृदय मेरी आत्मा है और पृथ्वी शरीर है। **शीर्ष्णो द्यौ समवर्तत, यस्य वातः प्राणा प्राणो, नाभ्याऽसीदन्तरिक्ष दिशः श्रोत्र, पद्भ्यां भूमिः।।**

द्यौ सिर, वायु प्राण, अन्तरिक्ष नाभि दिशा कान और भूमि पैर हैं।

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट हो जाता है कि पिण्ड का ब्रह्माण्ड के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह बात प्रत्यक्ष भी है कि बिना सूर्य के हम देख नहीं सकते, बिना वायु के हम श्वास नहीं ले सकते, बिना पृथ्वी हम खड़े नहीं हो सकते आदि आदि। तात्पर्य है कि पिण्ड ब्रह्माण्ड के साथ नत्थी है। वेद ने विराट और मनुष्य का पिता पुत्र का सम्बन्ध माना गया

है। आदिम अमैथुनी सृष्टि विराट से ही उत्पन्न होती है। बाइबिल में भी कहा है कि परमेश्वर ने मनुष्य को अपनी आकृति का बनाया। वैदिक दृष्टि से सूर्य को ब्रह्माण्ड का द्वार कहा है और विष्णु पुराण में उसे 'सौषुम्नतेजोधारणकारी' कहा है। इधर देह रूप पिण्ड में सम्पूर्ण नाड़ियों में सुषुम्ना को श्रेष्ठ और द्वार रूप माना है। हृदय से चारों ओर असंख्य नाड़ियाँ या पथ फैले हुए हैं। केवल एक सूक्ष्म पथ ऊपर मूर्धा की ओर गया हुआ है। यही सुषुम्ना है और इसी पथ से चल सकने पर सूर्य द्वार अतिक्रमण किया जाता है। तंत्रागम में भी कुण्डलिनी को लेकर कुछ इसी प्रकार की कल्पना की गई है। वहाँ कहा गया है—कि सृष्टि रचना के मूल में जो पराशक्ति काम करती है वह महा–कुण्डलिनी है, और वही कुण्डलिनी रूप से शरीर में प्रसुप्त अवस्था में स्थित है। यह साधन विशेष से उठाकर सहस्रार में जब महाकुण्डलिनी से मिल जाती है तब जीव की कृतार्थता सिद्ध होती है। वेद में सूर्य को ही यह सृष्टि कर्तृक महा शक्ति माना है 'सूर्य आत्मा जगत स्तस्थुषश्च'। आचार्य शौनक ने बृहद् देवता में कहा है कि एकमात्र सूर्य से ही भूत, भविष्य और वर्तमान के समस्त स्थावर और जंगम पदार्थ उत्पन्न होते हैं और उसी में लीन हो जाते हैं। प्रसव धर्म के कारण ही सूर्य सविता है (सवनात् सविता) प्रकृति का रहस्य जानने के लिए वेद संस्थान में सूर्य को ही प्रधान साधन माना गया है।

सूर्योपनिषद में कहा है–

'सूर्याद् भवन्ति भूतानि सूर्येण पालितानितु।
सूर्येलयं प्राप्नुवन्ति यः सूर्यः सोऽहमेव च'।।

तंत्रागम की यह निश्चित मान्यता है कि बिना कुण्डलिनी को उद्बुद्ध किये जीवन का कल्याण नहीं और वैदिक मान्यता है कि बिना सौर्य विज्ञान यानी सावित्री विद्या के ज्ञान से सूर्य मण्डल का भेद किए मुक्ति नहीं मिल सकती। इस प्रकार दोनों का साम्य शक्ति रूप ही स्थापित होता है।

❊ ❊ ❊

शोक संदेश

पूज्य गुरुदेव के अनन्य शिष्य धनबाद निवासी श्री बैजनाथ कठेसरिया का दीपावली के दिन प्रातः ८ बजे देहान्त हो गया। वे ७२ वर्ष के थे और पिछले एक–डेढ़ वर्ष से रुग्ण चल रहे थे। प्रभुजी उन्हे अपनी अभय गोद प्रदान करें। सिद्धयोग परिवार उन्हें अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है।

शरीर-क्षेत्र

पूज्यपाद योगिराज अनन्तश्री देवरहा बाबा

हमारे शरीर की भी महिमा विचित्र है। कितनी शक्तियाँ इसके भीतर निहित हैं, इसका हमें पूर्णतया बोध नहीं होता और न उन शक्तियों को प्रकट करने पर हमारा ध्यान ही होता है। लोग तो ऐश–आराम में अपना जीवन व्यतीत करना चाहते हैं, अपने अंदर की छिपी शक्तियों को विकसित करने का साधन करना नहीं चाहते। हमारा जैसा और जिसके साथ संसर्ग होता है, इसी पर हमारी शक्तियों का विकास निर्भर करता है। गुण और दोष एक दूसरे के संसर्ग से होते हैं 'संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति।' यद्यपि इस धरती में विभिन्न प्रकार के बीज छिपे हुए रहते हैं, फिर भी उगते वे ही हैं, जिन्हें हम बोते हैं। ठीक वही दशा हमारे शरीर की भी है।

गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने इस शरीर को 'क्षेत्र' कहा है। क्षेत्र को भाषा में 'खेत' कहते हैं। खेत का मतलब यह है कि जो बीज उसमें हम बोयेंगे, वही उगेगा। और फल पर्याप्त मात्रा में उत्पन्न हो, इसके लिये जैसा खेत बनाया जायेगा, जैसी खाद दी जायेगी, बीज भी वैसा ही पुष्ट और प्रचुरमात्रा में फल उत्पन्न करेगा। यदि खेत अच्छा नहीं बनाया जायेगा और उसमें उचित खाद आदि न दी जायेगी तो बीज की वृद्धि न होगी। ठीक वही दशा हमारे शरीर की भी है। इस शरीर के साथ जैसा संसर्ग बनाया जायेगा, उसका प्रतिफल भी वैसा ही होगा। इसलिये इस बात को सदा स्मरण रखना चाहिये कि जिन–जिन लोगों से या जिस प्रकार की विचार–धारा से हम प्रभावित होंगे, तदनुकूल ही हमारी अन्तर्निहित शक्तियों का विकास होगा। जमीन में कोई व्यक्ति घास नहीं बोता, किंतु उचित बोआई और खाद के अभाव में जैसे घास–काँटे आदि से आप–से–आप उत्पन्न हो जाते हैं, वही दशा हमारे शरीर की भी समझनी चाहिये।

अच्छे बीज और अच्छे फल के लिये जिस प्रकार अच्छी जोताई और खाद की आवश्यकता है, उसी प्रकार इस शरीर द्वारा उचित गुणों के विकास और प्रसार के लिये इसमें अच्छा संसर्ग एवं अच्छी साधनाओं की व्यवस्था होनी चाहिये। इन्हीं सब साधनाओं या व्यवस्थाओं को जो करते हैं, वे 'साधक' कहलाते हैं। साधना क्या है ? वह एक तरह की ताले की कुंजी है। मान लीजिये; किसी घर में ताला लगा है। जब तक ताला खोलकर हम अंदर प्रवेश नहीं करेंगे, तब तक उस घर में क्या रक्खा है, हम नहीं जान सकते। घर में प्रवेश करने के लिये जैसे ताला खोलना आवश्यक है और ताला खोलने के लिये जैसे कुंजी की आवश्यकता है, वैसे ही इस शरीर के द्वारा क्या–क्या किया जा सकता है, उसको जानने के लिये अर्थात् शरीर रूपी ताले को खोलने के लिये साधनारूपी कुंजी की आवश्यकता है। साधना द्वारा ही हम इस शरीर की अन्तर्निहित शक्तियों का प्रादुर्भाव कर सकते हैं और तब हम समझ सकते हैं कि परमात्मा ने अपनी कृपा द्वारा इस मानव शरीर में हमें क्या–क्या प्रदान करके रख छोड़ा है और उसके द्वारा हम इस विश्व सृष्टि में क्या

नहीं कर सकते हैं।

जैसे खेत के विषय में पूरी जानकारी वाले व्यक्ति को हम 'कृषक' या 'खेतिहर' कहते हैं, वैसे ही इस शरीर रूपी क्षेत्र के पूरे जानकार को भगवान् कृष्ण ने 'क्षेत्रज्ञ' की संज्ञा दी है। इस शरीररूपी क्षेत्र की महिमा की पूरी जानकारी ही यथार्थ में ज्ञान है–

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः।।
क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम।।

(गीता १३। १–२)

भाव इसका यह है कि यह शरीर क्षेत्र है और इसकी विशेषताओं को समझने वाले को 'क्षेत्रज्ञ' कहा जाता है और यह क्षेत्रज्ञ यानी आत्मा भी मेरा ही अंश है और क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का ज्ञान, अर्थात् प्रकृति और पुरुष को जानना तथा समझना ही यथार्थ ज्ञान है–ऐसा भगवान् श्रीकृष्ण का मत है। इस शरीर के द्वारा प्रकृति और पुरुष के सम्बन्ध को समझ लेना कोई आसान काम नहीं है। यही सबसे कठिन काम है। प्रथम यही विचार करना है कि यह जो शरीर है, वह नाशवान है और इसके अंदर नित्य निवास करने वाला आत्मा अजर और अमर है। इस आत्मा का न जन्म होता है और न मृत्यु, अर्थात् उसका कभी नाश भी नहीं होता। यह एक समस्या है कि इस नित्य रहने वाले आत्मा को यह नाशवान् शरीर क्यों कर प्राप्त हुआ ?

यही तो अन्तर है, जिसके कारण हम मनुष्य हैं और वह है परमात्मा। यदि ऐसा अन्तर न होता तो मनुष्य भी परमात्मा ही कहलाता। मनुष्य में जो जीवात्मा है, वह नित्य है और परमात्मा भी नित्य ही है। इसलिये हममें और परमात्मा में अन्तर कैसा ? इस गूढ़ तत्त्व को समझने के लिये घड़े और आकाश की उपमा दी जाती है। बाहर का जो आकाश है, वह वृहदाकार आकाश है और घड़े के अंदर जो आकाश का भाग है, वह वृहदाकार आकाश से सम्बन्धित है। यदि घड़ा फोड़ दिया जाय तो उसमें का आकाश जिस प्रकार वृहदाकार आकाश से जा मिलेगा, उसी प्रकार का सम्बन्ध इस शरीर के आत्मा और परमात्मा के साथ है। परमात्मा वृहदाकार आकाश के सदृश्य है उसी का अंश यह जीवात्मा घड़े रूपी शरीर में समाया हुआ है। शरीर न छूटता है और न परमात्मा से मिलन होता है। शरीर छूट जाय यानी जन्म–मरण से छुट्टी हो जाय तो हमारी मुक्ति ही हो जाय, अर्थात् हमारा यथार्थ सम्बन्ध उस परमात्मा से ही हो जाय, जो एक महान् कठिन काम है।

भगवान् ने अपनी लीला से इस जीवात्मा को ऐसा बाँध दिया है कि उससे निकलना इस जीवात्मा के लिये अत्यन्त दुष्कर हो गया है। इसी लीला को कोई 'माया' या कोई–कोई 'प्रकृति' के नाम से पुकारते हैं। परमात्मा ने हमारे चारों ओर माया का ऐसा आवरण डाल रखा है कि उससे निकलकर परमात्मा के निकट तक पहुँचना इस जीवात्मा के लिये असम्भव सा हो गया है। परमात्मा क्या है, माया या प्रकृति क्या है, जीवात्मा क्या है–इसकी यथार्थता नीचे लिखी घटना से आप समझ सकेंगे–

एक बार की बात है, विदेह राजा जनकजी से मिलने के लिये श्रीशुकदेवमुनि उनके यहाँ पधारे। जनक जी तो राजा ही ठहरे, उनका विशाल राजभवन, उसके आगे सशस्त्र पहरेदार, फिर भीतर भी पहरेदार—इस प्रकार पहरेदारों से राजमहल सुरक्षित था। जब श्रीशुकदेवजी राजमहल के फाटक पर आये, तब नियमानुसार पहरेदारों ने उनका परिचय पूछा और उन्हें वहीं फाटक पर रोक दिया। इस प्रकार श्रीशुकदेवजी को फाटक पर रुके–रुके सात दिन और सात रातें व्यतीत हो गयीं, न तो जनकजी ने उन्हें बुलाया और न शुकदेवजी वहाँ से झुंझलाकर वापस गये। जब इस प्रकार श्रीशुकदेवजी के धैर्य, शील एवं स्वभाव की पूरी–पूरी परीक्षा हो गयी, तब आठवें दिन जनकजी ने श्रीशुकदेवजी को राजभवन में प्रवेश करने की आज्ञा अपने द्वारपालों द्वारा भेज दी। इस प्रकार आज्ञा मिलने पर श्रीशुकदेवजी ने महल के अंदर प्रवेश किया। महल के अंदर द्वार से लेकर जनक निवास तक अनेकानेक आकर्षक वस्तुओं के प्रदर्शन का आयोजन था। यदि श्रीशुकदेवजी चाहते कि किसी आकर्षक वस्तु को रास्ते में देख लेते और फिर जनक जी की ओर आगे बढ़ते तो उसमें किसी को कोई आपत्ति भी नहीं थी, किंतु श्रीशुकदेवजी ने न तो कोई आकांक्षा की और न उनके मन में किसी वस्तु की कोई लालसा ही थी। वे तो रास्ते की सारी आकर्षक वस्तुओं की उपेक्षा करते हुए सीधे जनक जी के स्थान को चलते गये और जनक जी के पास पहुँचने पर उन्होंने उनका बहुत सम्मान किया। श्रीशुकदेवजी ने राजा जनक से कुछ प्रश्न किये और उनसे कुछ सीखना चाहा तो राजा जनक ने कहा कि 'आपके लिये अब क्या सीखना और जानना बाकी रह गया है। जब मेरे समीप तक पहुँचने में रास्ते की कोई भी आकर्षक वस्तु आपको मोहित और प्रभावित नहीं कर सकी तब आपके लिये अब कौन–सा योग शेष रह गया है।' उन्होंने पुनः सम्मान के साथ श्रीशुकदेवजी को विदा कर दिया।

सारांश यह कि परमात्मा तक पहुँचने के लिये इस जीवात्मा को अनेकानेक प्रलोभनों को त्यागना पड़ता है। साधक के लिये माया के दुस्तर जाल को काटना आवश्यक है। तभी यह जीवात्मा परमात्मा को प्राप्त करने में समर्थ होता है। विरले ही ऐसे व्यक्ति मिलेंगे, जो इस माया जाल से अपने को बचा सकें। ऐसा तो केवल योगियों के लिये ही सम्भव है, जिन्हें ज्ञान–चक्षु प्राप्त हो चुके हैं।

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा।
भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम्।।

(गीता १३। ३४)

इस प्रकार क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के भेद और प्रकृति अर्थात् माया से छूटने के उपाय को जो पुरुष ज्ञान–नेत्रों द्वारा तत्त्व से जानते और समझते हैं, वे ही महात्मा योगी उस परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त होते हैं।' परमात्मा की प्राप्ति के लिये बहुत त्याग और तपस्या की आवश्यकता है, जो केवल इस मानव–शरीर से ही सम्भव है। अतएव इसकी महत्ता को समझते हुए मानव–शरीर की सुरक्षा पर भी हमें विशेष ध्यान देना चाहिये। अपने इस शरीर को आमोद–प्रमोद और विलासिता में नष्ट नहीं करना चाहिए। परमात्मा ने बड़ी कृपा

करके ही हमें यह शरीर दिया है और इसका उद्देश्य क्या है, इस पर हमें विचारते रहना चाहिये। इसी बात की चेतावनी संत तुलसीदास ने अपने मानस-रामायण में दी है—

बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा।।
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहिं परलोक सँवारा।।

(७। ४२। ४)

अतएव हर एक व्यक्ति को अपने शरीर की उपयोगिता और महत्ता को समझते हुए इसमें की निहित शक्तियों को अच्छे संसर्ग द्वारा विकसित करना चाहिये, ताकि यह जीवात्मा माया के आवरण को हटाकर भगवान की प्राप्ति के मार्ग पर अग्रसर हो सके।

❊ ❊ ❊

सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयात्

सच और प्रिय बोलना चाहिये। किंतु अप्रिय सत्य नहीं बोलना चाहिये- 'न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्।' इसी प्रकार असत्य प्रिय नहीं बोलना चाहिये। साधारणतया सत्य बोलने की धर्मशास्त्रीय व्यवस्था यही है। अतः इस नियम के पालन के लिये हित, मित वचन बोलना अथवा अधिकतर मौनावलम्बन लेना उचित होता है। यदि हम माता गीता (१७। १५) का उपदेश मानकर वाङ्मयी तपस्या में लग जायें तो हमारा ऋत-सत्य का व्रत सुतराम् परिपालित हो जाय। इसके लिये आवश्यक होगा कि हम उद्वेग करने वाले वचन न बोलें। सत्य, प्रिय, हित वचन बोलें और वेद-शास्त्रों (सद्ग्रन्थों) का अध्ययनाभ्यास करें। इस वाङ्मयी तपस्या से हमें वाक्-सिद्धि मिल सकती है, अपना कल्याण साध सकता है।

सत्य हरिश्चन्द्र, 'रामोद्विर्नाभिभाषते' वाले श्रीराम, उत्तरा के गर्भ की अलौकिक ढंग से रक्षा करने वाले श्रीकृष्ण, असत्यवाद से उद्विग्न होने वाले राजा बलि प्रभृति सत्यवादी, यद्यपि आज नहीं है, पर उनकी सत्यवादिता की सुकीर्ति सर्वथा चिर सुरक्षित है।

सत्य की महिमा अनन्त है—सत्य से ही पृथिवी टिकी हुई है। ऋक् श्रुति (१०। ८५। १) कहती है—सत्येनोत्तभिता भूमिः। वेदव्यास के अनुसार जिन सात सत्त्वों पर पृथ्वी धारित है उसमें गाय, विप्र, वेद (शास्त्र) अलोभी, दानशील के साथ ही सत्यवादी भी अन्यतम है। वस्तुतः 'नास्ति सत्यात् परो धर्मः' (महाभा० शा० १६३। २४) सर्वथा सटीक है, सार्थक है। इसलिये गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं—

'सत्य मूल सब सुकृत सोहाए।'

सच्ची बात तो यह है कि सत्य की ही विजय होती है—'सत्यमेव जयते।' असत्य की विजय कभी नहीं होती—नानृतम्। 'अतः श्रुति कहती है—सत्य से प्रमाद न करना—सत्यान्न प्रमदितव्यम्।'

तुलसी का पौधा

डॉ० श्रीगोपाल प्रसाद 'वंशी'

तुलसी के पौधे को समस्त भारत में बड़े आदर की दृष्टि से देखा जाता है। धार्मिक उपयोग के अतिरिक्त इसकी पत्तियों का औषधि के रूप में सेवन भी किया जाता है। वैदिक साहित्य में 'तुलसी' शब्द नहीं मिलता। इसका सम्बन्ध इतिहास–पुराणों से है। इसके प्रत्येक भाग में एक तेज सुगन्ध होती है। हरित तोड़ने पर इसकी सुवास के साथ मञ्जरी का हर फूल सिहरता–सा दिखायी पड़ता है। इसकी मञ्जरी अति कोमल और अनेक रंग–छटाओं से मण्डित होती है। इसका बीज काला, पर सुन्दर होता है। हवा की लहरों पर वह सहज में ही उड़ जाता है और बरसात की पहली झड़ी के साथ उग जाता है।

तुलसी मुख्यतः दो प्रकार की होती है–श्वेत और श्यामा। आयुर्वेद की दृष्टि श्वेत तुलसी की अपेक्षा श्यामा तुलसी में अधिक गुण पाये जाते हैं, पर पुराणों में अधिक पुण्य श्वेत को ही निर्दिष्ट है। यह गर्म त्रिदोषनाशक, खाँसी, शूल, कृमि, वमन तथा वातनाशक और आरोग्यवर्धक होती है। तुलसी कई नामों से प्रचलित है। जैसे–सुलभा, सुरसा, वृन्दा, वैष्णवी, अमृता, श्यामा, रामा, गौरी तथा बहुमंजरी आदि। अंग्रेजी में तुलसी को 'होलीबेसिल' (Holy Basil) तथा 'सेक्रेड बेसिल' (Sacred BAsil) कहते हैं। लैटिन में इसे 'ओसिमम बेसिलिकम' (Ocimum Basilicum) और जर्मन–भाषा में 'बेसिलिन क्रांट' (Basilen Krant) कहा जाता है। फ्रेंच तथा ग्रीक भाषाओं में 'बेसिल' (Basil) का अर्थ है–'दैवी शक्ति'।

ब्रह्मवैवर्तपुराण में तुलसी की उत्पत्ति समुद्रमंथन के समय निर्दिष्ट है। इसका विशेष सम्बन्ध विष्णु से है। संस्कृत इसे 'हरिप्रिया' कहते हैं। 'स्कान्द तुलस्यु पाख्यान' में कहा गया है कि भगवान् विष्णु जालंधर की पत्नी वृन्दा के अग्निप्रवेश कर जाने पर दुःखित एवं विक्षिप्त से हो गये। उन्हें मोहजाल से बचाने के लिये अन्य देवों ने लक्ष्मी–गौरी आदि से प्रार्थना की। उन देवियों में से प्रत्येक ने देवों को कुछ बीज देकर कहा–इन्हें वहां बो देना जहाँ विष्णु विमोहित हुए थे। इन देवों ने ऐसा ही किया। फलतः उस स्थान पर धात्री, मालती, बिल्व और पुनः तीनों के एकत्र बीज से तुलसी उगकर पल्लवित और पुष्पित हो गयी। इससे भगवान् विष्णु का मन–क्लेश दूर हुआ। लोगों का विश्वास है कि तुलसी की जड़ में सभी तीर्थ, मध्य में सभी देव–देवियाँ और ऊपरी शाखाओं में सभी वेद स्थित हैं। इस पौधे की पूजा विशेषकर स्त्रियाँ करती हैं। जिनमें विशेष धर्मनिष्ठा है, वे तो सालभर पूजती हैं, परन्तु विशेषरूप में यह कार्तिक मास में पूजी जाती है। धार्मिकजन तुलसी का

विवाह बालमुकुन्द या शालिग्राम के साथ कार्तिकमास में कराते हैं।

जिनके मृत शरीर का दहन तुलसी काष्ठ की अग्नि से किया जाता है, वे विष्णु लोक में जाते हैं–उनका पुनर्जन्म नहीं होता। यदि दाह–संस्कार के समय अन्य लकड़ियों के भीतर एक भी लकड़ी तुलसी की हो तो करोड़ों पापों से युक्त होने पर भी मनुष्य की मुक्ति हो जाती है। तुलसी की लकड़ी की अग्नि से जिस मनुष्य के शव का दाह होता है, उसे विष्णु स्वयं ही आकर बैकुण्ठ ले जाते हैं। यमराज के दूत उसे नहीं ले जा सकते।

जिस घर में तुलसी का पौधा होता है, उस घर में कभी दरिद्रता नहीं रहती और बन्धुओं से वियोग नहीं होता। जहाँ तुलसी होती है, वहाँ भय और रोग नहीं ठहरते। जहाँ तुलसी की सुगन्ध लेकर हवा बहती है, वहाँ की दसों दिशाएँ और सब प्रकार के जीवन पवित्र हो जाते हैं। कहा गया है कि शिवमन्दिर में यदि तुलसी का पौधा लगाया जाय तो उससे जितने बीज तैयार होते हैं, उतने ही युगों तक मनुष्य स्वर्ग में निवास करता है।

तुलसी का पौधा एक प्रकार से हिन्दू–घरों की शोभा है। धार्मिक दृष्टि से इस पौधे को बड़े महत्त्व का स्थान प्राप्त है। बिना इसके भगवान विष्णु की पूजा पूरी नहीं होती। इसकी पौराणिक महत्ता भी है। विष्णु भगवान् को प्रसाद–भोग लगाने के समय प्रसाद में तुलसी–पत्र डालना अनिवार्य है। तुलसी पत्र तोड़ने का यह नमस्कार–मन्त्र है–

वृन्दायै तुलसीदेव्यै प्रियायै केशवस्य च।
केशवार्थे चिनोमि त्वां वरदा भव सर्वदा।।

तुलसी केवल पूजा की ही वस्तु नहीं है। उसकी असाधारण उपयोगिता तथा उसके आश्चर्यजनक गुणों ने भी उसे अवश्य पूजनीय बना दिया है। हमारे प्राचीन ऋषि–मुनि इसके अद्भुत गुणों से अच्छी तरह परिचित थे, उन्होंने ही इसे इतना महत्वपूर्ण स्थान दिया। पर आज मात्र तुलसी केवल कुछ घरों में पूजा की वस्तु ही रह गयी है। हमारे पूर्वज इसके गुणों के कारण देवत्व की भावना रखते थे। यदि औषधि–रूप में वे इसका प्रचार करते तो वह सहज सेव्य न होकर संकुचित हो मात्र वैद्यकशास्त्र की वस्तु हो जाती। उससे विस्तृत जन–कल्याण सम्भव नहीं हो पाता। तुलसी के देवत्व के सम्बन्ध में भी यही धारणा है–

यत्रैकस्तुलसीवृक्षस्तिष्ठति द्विजसत्तमाः।
तत्रैव त्रिदशाः सर्वे ब्रह्मविष्णुशिवादयः।।

(पद्मपु० क्रियायोगसार)

जहाँ तुलसी का एक भी पौधा होता है, वहाँ ब्रह्मा, विष्णु, शंकर आदि सब देवता निवास करते हैं।'

तुलसीसेवनात् सेकात् पातकानि महान्त्यपि।
संक्षयं यान्ति देवेशि तमः सूर्योदये यथा।।

(गौ० त० तु० मा० उ०)

तुलसी लगाने और उसकी सेवा करने से महापातक भी उसी प्रकार नष्ट हो जाते है, जैसे सूर्य के उदय होने से अन्धकार नष्ट हो जाता है।' इसके अतिरिक्त जहाँ तुलसी का जंगल होता है, उसके आस-पास एक कोस तक की पृथ्वी गंगाजल के समान पवित्र होती है। इतना ही नहीं, तुलसी केवल पवित्र ही नहीं, प्रत्युत अमृत-तुल्य भी है। जिस तरह तुलसी के पौधे के आस-पास की वायु शुद्ध रहती है और स्वास्थ्यवर्धक होती है, उसी प्रकार तुलसी के पौधे के नीचे की मिट्टी भी शुद्ध एवं गुणकारी होती है। कहते हैं जिस प्रसाद में तुलसी नहीं रहती भगवान् उसे स्वीकार नहीं करते हैं। इसी कारण ईश्वर-भक्त (वैष्णव) भोज्य सामग्री में बिना तुलसी-पत्र डाले भोजन नहीं करते और मरते समय मरने वाले के मुख में गंगाजल के साथ तुलसी-पत्र देना उसकी मुक्ति का साधन मानते हैं।

तुलसीगन्धमादाय यत्र गच्छति मारुतः।
विदिश्चय दिशः पूता भूतग्रामश्चतुर्विधः।।

धार्मिक दृष्टि से जितनी महत्ता तुलसी को स्वीकार की गयी है, शायद ही उतनी महत्ता किसी अन्य वनस्पति को दी गयी हो। कार्तिक मास में आरम्भ से ही लोग नित्य स्नानादि से निवृत्त होकर तुलसी के पौधे को जल चढ़ाते और पूजा करते हैं। तुलसी चौतरे पर भक्ति से दीप-दान करना भी पुण्यजनक माना जाता है। स्त्रियाँ इसकी उपासना अनेक प्रकार की भावनाओं से करती हैं। कन्याएँ सुन्दर, भद्र, कुलीन और सुसंस्कृत वर-प्राप्ति के लिये, महिलाएँ अपने वर्तमान सुहाग को अचल और सुखकर रहने के लिये, विधवाएँ सुख, शान्ति और शेष जीवन को भगवद्भक्ति-प्रदायिनी बने रहने के लिये तुलसी की पूजा-अर्चना करती हैं। तुलसी-पूजा भक्ति-संजीवनी और कल्याणमयी भी है।

मुख-शुद्धि के लिये तुलसी दल चबाना एक प्रचलन है। राम-नामोच्चारण के साथ मरणासन्न के मुख में तुलसी दल, सोना और गंगाजल डालना उसकी शरीरगत अपवित्रता को नष्ट करने का साधन है। आँगन में तुलसी का पौधा लगाना गृह-सौन्दर्य के साथ-साथ धार्मिक, सामाजिक और आयुर्वेदिक महत्त्वयुक्त भी है। हनुमान जी ने भी विभीषण के भवन की भीतियों पर रामायुधों के चिन्ह और वहाँ लगे तुलसी के पौधे को देखकर 'साधु-निवास' समझा था-

रामायुध अंकित गृह सोभा बरनि न जाइ।
नव तुलसिका बृंद तहँ देखि हरष कपिराई।।

(मानस ५। ५)

अयोध्या में सरयू तट पर तुलसी के अनेक वृन्द थे-

तीर तीर तुलसिका सुहाईं। बृंद बृंद बहु मुनिन्ह लगाईं।।

(मानस ७। २८। ६)

प्रायः अब भी वहाँ बहुत से तुलसी के वृन्द हैं। अवध के लोक–गीत में तुलसी–भक्ति की सार्थक चर्चा है–

मचिए बैठि सीतल रानी सखियाँ सब पूछईं,
कवन कियेउ व्रत-नेम रमइया वर पायेउ।।

सीता का उत्तर नारी की तुलसी भक्ति–भावना की ओर संकेत करता है–

कातिक मास नहायेउँ, सुरुज पइयाँ लागिउँ,
तुलसी दियना मैं बारेउँ, रमइया वर पायेउँ।

कार्तिक मास में नित्य, स्नान, सूर्य–नमस्कार और तुलसी को दीपरूपी ज्योतिपुंज समर्पित कर सीता–जैसी कन्या को राम–सा वर प्राप्त हुआ है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि भारतीय लोक–मानस में तुलसी के पौधे के प्रति व्यापक आस्था–श्रद्धा है। वैष्णवजनों में अनेक भक्तजन तुलसी माला पर जप करते और उसका पहनना पुण्यजनक मानते हैं। आयुर्वेदशास्त्र में भी तुलसी की महिमा इस प्रकार वर्णित है–

तुलसी पित्तकृद् वातक्रिमिदौर्गन्ध्यनाशनी।
पार्श्वशूलारतिश्वास-कासहिक्काविकारजित्।।

(भा० प्र०)

'तुलसी पित्तनाशक, वात–क्रिमि तथा दुर्गन्धनाशक है। पसली का दर्द, अरुचि, खाँसी, श्वास, हिचकी आदि विकारों को जीतने वाली है।

तुलसी लघुरुष्णा च रूक्षा कफविनाशनी।
क्रिमिदोषं निहन्त्येषा रुचिकृद्वन्हिदीपनी।।

(धन्वन्तरिनिघण्टु)

तुलसी लघु, उष्ण, कफनाशक, कृमि–दोषों को दूर करने वाली, रुचि बढ़ाने वाली और जठराग्नि को दीप्त करने वाली है।'

गौरवे शिरसः शूले पीन से ह्यहिफेन के।
क्रिमिव्याधावपस्मारे घ्राणनाशे प्रमेह के।।

(चरक सू० अ० २। ५)

'सिर का भारी होना, पीनस, माथे का दर्द, आधा सीसी, मृगी, नासिका–रोग, क्रिमि–रोग तुलसी से दूर होते हैं।' इसके अतिरिक्त अनेक ग्रन्थ तुलसी के चमत्कारिक गुणों की महिमा से भरे पड़े हैं। तुलसी का पौधा साधारणतः मार्च से लेकर जून तक लगाया जाता है। सितम्बर और अक्टूबर में यह फूलता है और जाड़े के दिनों में इसके बीज पकते हैं। इस तरह यह बारहों महीने पाया जा सकता है। इसके सभी अंग–पत्तियाँ, बीज और डण्ठल औषधि का काम करते हैं। इसकी जड़ ज्वर का प्रकोप शान्त करने वाली, उसका बीज वीर्य को गाढ़ा बनाने वाला तथा शान्तिदायक होता है। उसका सूखा

हुआ पौधा पाचनशक्ति बढ़ाने का अद्वितीय गुण रखता है। इसकी पत्तियों से कुछ पीलापन लिये हुए हरे रंग का तेल निकलता है। उस तेल को अगर कुछ समय के लिये पड़ा रहने दिया जाय तो वह जमकर रवादार हो जाता है और बड़ा ही गुणकारी होता है।

तुलसी मलेरिया-निवारक है तथा मच्छरों को दूर भगाती है। मच्छरों को दूर भगाने वाली तुलसी और साधारण तुलसी में कुछ अन्तर है। उसे वन-तुलसी कहते हैं। यदि हर रोज तुलसी के दो-चार पत्ते चबा लिये जायें तो उससे सभी प्रकार के ज्वरों और खासकर मलेरिया के प्रकोप से बचाव होगा। सम्भवतः प्राचीन ऋषियों ने इसी कारण विष्णु-पूजन के बाद चन्दन, तुलसीदल सहित चरणामृत पान करने की विधि निकाली है। आज भी यदि आप मन्दिरों में जायें तो पुजारी लोग यही चरणामृत पान करायेंगे और कहेंगे-

> अकालमृत्युहरणं सर्वव्याधिविनाशनम्।
> विष्णोः पादोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते।।'

तुलसी की गंध कुछ इस प्रकार की है कि उससे मच्छर आदि कीड़े उस स्थान में नहीं रह सकते। सुना तो यहाँ तक जाता है कि तुलसी के पौधे के आस-पास साँप भी नहीं टिक सकते। तुलसी के पौधे की सुगन्ध वातावरण को शुद्ध करने वाली होती है। पाश्चात्य डाक्टरों ने भी अपना यह मत प्रकट किया है कि मलेरिया को दूर रखने के लिये तुलसी सबसे उत्तम और साथ ही सस्ती औषधि है। यदि दो-चार तुलसी की पत्तियाँ काली मिर्च के साथ घोंटकर गर्मी के दिनों में खायी जायँ अथवा जाड़े के दिनों में उसे काली मिर्च के साथ उबालकर लिया जाय तो मलेरिया का रोग दूर हो जाता है तथा अन्य प्रकार के भी बुखार जाते रहते हैं। अगर चिकित्सक इसका ठीक उपयोग करना जानता है तो तुलसी क्षय-रोग से भी छुटकारा दिला सकती है। तुलसी के काढ़े में थोड़ी-सी मिश्री और गाय का दूध मिलाकर पीने से थकावट मिटती है और सर्दी, खाँसी दूर हो जाती है। नीबू के रस के साथ तुलसी की पत्तियों का सेवन करने से चर्म-रोग दूर होते हैं। इससे चेहरे पर पड़े काले धब्बे दूर हो जाते हैं और सौन्दर्य में वृद्धि होती है। तुलसी का तेल फोड़े, पीव के फोड़े और खुजली आदि के लिये लाभदायक होता है। इसके अतिरिक्त तुलसी के तेल से पीब देने वाले भारी घाव भी अच्छे होते हैं, यहाँ तक कि गरमी के रोगी भी इससे लाभ उठाते हैं। तुलसी सर्प-विष की राम-बाण औषधि है। साँप के काट लेने पर शीघ्र ही रोगी को दो-चार पत्तियाँ खिला देनी चाहिये। उसके उपरान्त दो तोला तुलसी की जड़ अथवा पत्ती, एक तोला काली मिर्च के साथ थोड़े से पानी में मिलाकर देना चाहिये। इसके सेवन से बेहोशी भी मिटेगी। जहाँ साँप ने काटा हो, उस स्थान पर तुलसी की जड़ को घिसकर मक्खन वो साथ मिलाकर उसकी पट्टी लगा देनी चाहिये। पट्टी का रंग विष के कारण सफेद से काला हो जायेगा। पट्टी का रंग काला पड़ते ही उसे फौरन बदल

देना चाहिये और जब तक उसका रंग सफेद न दीख पड़े तब तक इस क्रम को जारी रखना चाहिये।

इन सब गुणों के अतिरिक्त अन्य बीमारियों के भी दूर करने में तुलसी सहायक होती है। स्त्रियों के लिये प्रसूति–ज्वर में तुलसी का सेवन बड़ा लाभदायक होता है। पुरुषों के लिये तुलसी का बीज वीर्य को गाढ़ा बनाने वाला तथा शान्तिदायक होता है। वीर्य बढ़ाने के लिये १८ ग्रेन तुलसी का बीज ३६ ग्रेन पुराने शीरे में मिलाकर सुबह–शाम गाय के ताजे दूध के साथ सेवन करना चाहिये।

तुलसीकाननं चैव गृहे यस्यावतिष्ठते।
तद् गृहं तीर्थभूतं हि नायान्ति यमकिंकराः।।
तुलसीमञ्जरीभिर्यः कुर्याद्धरिहरार्चनम्।
न स गर्भगृहं याति मुक्तिभागी भवेन्नरः।। (पद्म० पु० स्व०)

'जिसके घर में तुलसी–वृन्द होता है, वह घर तीर्थ रूप हो जाता है, वहाँ यमदूत नहीं आते। जो मनुष्य तुलसी–मञ्जरी से भगवान् हरि–हर की पूजा करता है, वह फिर गर्भ में नहीं आता, वह मुक्ति का भागी हो जाता है।'

पूर्णिमायाममायां च द्वादश्यां रविसंक्रमे।
तैलाभ्यंगे चसुस्नाते मध्यान्हे निशिसंध्ययोः।।
अशौचे शुचिकाले वा रात्रिवासोऽन्विता नराः।
तुलसीं ये विचिन्वन्ति ते छिन्दन्ति हरेः शिरः।।
त्रिरात्रं तुलसीपत्रं शुद्धं पर्युषितं सति।
श्राद्धे व्रते च दाने च प्रतिष्ठायां सुरार्चने।।
भूगतं तोयपतितं यद् दत्तं विष्णवे सति।
शुद्धं च तुलसीपत्रं क्षालनादन्यकर्मणि।। (ब्रह्मवैवर्तपु० प्रकृतिखण्ड २१। ५०–५३)

'पूर्णिमा, अमावस्या, द्वादशी, (रविवार), सूर्य–संक्रान्ति के दिन, मध्यान्हकाल, रात्रि, दोनों संध्याओं और अशौच के समय, तेल लगाकर, बिना नहाये–धोये अथवा रात के कपड़े पहले हुए जो मनुष्य तुलसी के पत्रों को तोड़ता है, वे मानों भगवान् श्रीहरि का मस्तक छेदन करते हैं। साध्वि ! श्राद्ध, व्रत, दान, प्रतिष्ठा तथा देवार्चन के लिये तुलसी पत्र बासी होने पर भी तीन रात तक पवित्र ही रहता है। पृथ्वी पर अथवा जल में गिरा हुआ तथा श्री विष्णु को अर्पित तुलसीपत्र धो देने पर दूसरे कार्य के लिये शुद्ध माना जाता है। निष्कर्ष यह कि तुलसी का पौधा धार्मिक और लौकिक–दोनों दृष्टियों से कल्याणकारी और लाभदायक है। कार्तिक मास में तुलसी पूजन–अर्चन विवाहादि कृत्य करना चाहिये। प्रत्येक गृहस्थ को अपने घर में एक पौधा अवश्य रखना चाहिये। तुलसी का पौधा नैरुज्यकर एवं स्वास्थ्यवर्द्धक होता है।

"जीवनीशक्ति कुण्डलिनी"

जे. पी. शर्मा, पाँटा साहिब (हि० प्रदेश)

जैसे तराजू में सुमेरु आधार होता है उसी प्रकार हमारे शरीर का आधार रीढ़ अथवा मेरुदण्ड है। मेरुदण्ड में तेंतीस हड्डियाँ होती हैं। ये तेंतीस हड्डियाँ तेंतीस करोड़ देवों की प्रतीक हो सकती हैं। इनका सम्बन्ध प्रजापति, इन्द्र, अष्टवसु, द्वादश आदित्य तथा एकादश रुद्र से भी माना जा सकता है। भीतर से मेरुदण्ड खोखला होता है। इसके नीचे का भाग छोटा तथा नोंकदार होता है। नोंकदार भाग से आस पास का भाग नाड़ी कन्द (PLEXUS) होता है। इसी कन्द में जीवनीशक्ति कुण्डलिनी रहती है। शास्त्रों में संसार में व्याप्त आद्या शक्ति ही ब्रह्म शक्ति है। इसे अनेकों नामों से जाना जाता है। देवी, महादेवी, शिवा, प्रकृति, भद्रा, रुद्रा, गौरी, शक्ति तथा धात्री अनेकों नामों से वर्णित है। शरीर स्थित प्रज्ञाशक्तियों के केन्द्रीभूत शक्ति को देवी कुण्डलिनी (Serpentine Nerve) कहा गया है। कुण्डलिनी शरीर का समस्त क्रियाशक्ति का आधार है। माँ के गर्भ से जैसे ही बच्चा भूमि पर आता है कुण्डलिनी नाड़ी को नींद आ जाती है। सर्पवत साढ़े तीन कुण्डल मार कर अपनी पूँछ मुँह में दबाकर पड़ी रहती है। कुण्डलिनी सारी शक्तियों का भण्डार है। अतः इसका जाग्रत होना ही मोक्षदायी है।

हमारे शरीर में तीन लाख पचास हजार नाड़ियाँ हैं। उनमें से चौदह नाड़ियाँ प्रमुख कही गई हैं। ये इस प्रकार हैं :– सुषुम्ना, ईड़ा, पिंगला, गान्धारी, हस्तिजिह्वा, कुहू, सरस्वती, पूषा, शंखिनी, पयस्विनी, वारुणा, अलम्बुषा, विश्वोदरी तथा यशस्विनी। इन चौदह नाड़ियों में भी तीन नाड़ियाँ पिंगला, ईड़ा तथा सुषुम्ना प्रधान होती हैं।

यथा :–

सार्धलक्षत्रय नाड्यः सन्ति देहान्तरे नृणाम्।
प्रधानभूता नाड्यस्तु तासु मुख्याश्चतुर्दश।।
सुषुम्णेडा पिंगला च गान्धारी हस्तिजिह्वका।
कुहूः सरस्वती पूषा शंखिनी च पयस्विनी।।
वारुणालम्बुषा चैव विश्वोदरी यशस्विनी।
एतासुतिस्रो मुख्याः स्युः पिंगलेडा सुषुम्णिका।।

(शिवसंहिता २/१३–१५)

मेरुदण्ड के बाहर बाईं तरफ से ईड़ा तथा दाहिनी तरफ से पिंगला नाड़ियाँ लिपटी रहती हैं। सुषुम्ना नाड़ी मेरुदण्ड के भीतर कन्दस्थान से शुरू होकर कपाल में स्थित सहस्रदल से शुरू होकर कपाल में स्थित सहस्रदल कमल (CEREBRAL PLEXUS) तक जाती है। सुषुम्ना के भीतर वज्रा, चित्रिणी, और ब्रह्मनाड़ी होती हैं। योगक्रियाओं द्वारा जाग्रत कुण्डलिनी नाड़ी इसी ब्रह्मनाड़ी द्वारा कपाल में स्थित ब्रह्मरन्ध्र तक जाकर भगवान शिव के साथ सामंजस्य स्थापित करके साधक को अपना सर्वस्व लुटा देती है। साधक अजर अमर हो जाता

है। सिद्धियाँ उसके साथ–साथ रहती हैं। वह मानव से देव बन जाता है।

मेरुदण्ड (SPINAL CORD) के अन्दर ब्रह्मनाडी में पिरोये हुये छः कमल दलों की कल्पना की गई है। शल्यक्रिया द्वारा कमलों को आँखों से देखा जाना असंभव है। इन्हें ही हम षट्चक्र कहते हैं। इन चक्रों में कमल दलों की संख्या तथा रंग पृथक–पृथक होते हैं। ये चक्र शरीर में स्थित मेरुदण्ड में जिस–जिस अंग के सामने हैं चक्रों का नाम भी उन्हीं अगों के नाम से पुकारा गया है। ये छः चक्र इस प्रकार हैं :-

(१) मूलाधार चक्र (PELVIC PLEXUS) :– यह प्रथम चक्र रीढ़ की हड्डी के सबसे नीचे भाग से लगे गुदा तथा लिंग के मध्य में है। चक्र में चार कमल दल रक्त वर्ण के कहे गये हैं। चारों दलों पर क्रमशः वँ, शँ, षँ तथा सँ अक्षर माने गये हैं। चक्र पृथ्वी द्योतक और चतुष्कोणीय है। यँत्र का रंग पीले रंग का तथा बीजाक्षर लँ है। वाहन ऐरावत हाथी पर इन्द्र विराजमान है। प्रथम पूज्य गणेश अपनी शक्तियाँ ऋद्धि तथा सिद्धि सहित विराजमान है। यँत्र के मध्य में स्वयम्भू लिंग है। सर्पाकार कुण्डलिनी नाड़ी लिंग के चारों तरफ साढ़े तीन फेरे लेकर अपनी पूँछ मुँह में दबाये सुषुप्तावस्था में पड़ी रहती है। श्रष्टि के सारे भेद छुपाये सोती रहती है। स्रष्टि का राज जानने के लिये ही योगजन, सुषम्ना नाड़ी का प्रवेश द्वार खोलने हेतु कुण्डलिनी के जगाने का प्रयास करते हैं। इस चक्र के ध्यान से अपान वायु का निदान होता है। शरीर में आरोग्यता आती है। मन शान्त, प्रफुल्लित रहता है। श्रष्टि के महावाक्यों को समझने की क्षमता आती है। भू–लोक का ज्ञान होता है।

(२) स्वाधिष्ठान चक्र (HYPOGASTRIC PLEXUS) :– यह चक्र मूलाधार चक्र से दो अँगुल ऊपर पेडू के पास है। यह छः सिन्दूर वर्ण कमल दलों वाला है। दलों पर क्रमशः बँ, भँ, मँ, यँ, रँ तथा लँ की स्थिति मानी गई है। चक्र अर्धचन्द्राकार, जलतत्व का द्योतक है। चक्र का रंग चन्द्र आभायुक्त शुभ्रवर्ण तथा वाहन मगर है जिस पर वरुण विराजमान है। तत्व बीज 'वँ' तथा ब्रह्माजी देवता है। यह व्यान वायु का मुख्य स्थान है। इस चक्र का ध्यान करने से मनुष्य सभी विद्याओं में निपुणता धारण कर लेता है। साधक ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश की क्षमता हासिल कर लेता है।

(३) मणिपूरक चक्र (SOLAR PLEXUS) :– इस चक्र का स्थान नाभि प्रदेश है। यह त्रिकोणाकार लाल रंग वाले अग्नि तत्व का द्योतक है। इसका बीज 'रँ' तथा वाहन मेष है। यह दश कमल दलों वाला होता है। दलों पर क्रमश डँ, ढँ, णँ, तँ, थँ, दँ, धँ, नँ, पँ तथा फँ अक्षरों की स्थिति मानी गई है। चक्र का रंग बाल रवि जैसा है। समान वायु का स्थान है। शरीर में शक्ति पैदा करने का स्थान है। मेष के ऊपर अग्नि देव सवार है। इसके देव सर्वपालक विष्णु देव हैं। लोक स्वः का स्थान है। ध्यान करने से भोजन पचाने की शक्ति बढ़ती है। शरीर में व्यूह रचना का ज्ञान प्राप्त होता है।

(४) अनाहत चक्र (CARDIAC PLEXUS) :– यह चक्र हृदय प्रदेश के सामने

स्थित है। इसमें अरुणावर्ण के द्वादश दलों से युक्त कमल दल बना है। कमल दलों पर क्रमशः कँ, खँ, गँ, घँ, ङँ, चँ, छँ, जँ, झँ, ञँ, टँ तथा ठँ अक्षर स्थित हैं। यह वायु तत्व का सूचक है जो धूम्रवर्ण है। बीज यंत्र 'यँ' है। बीज का वाहन मृग है। देवता रुद्र है। प्राणवायु का मुख्य स्थान है। महर्लोक है। शक्ति त्रिनेत्री काकिनी है। यह स्पर्श शक्ति त्वचा का केन्द्र है। इस चक्र का ध्यान करने से साधक को वाकपटुता, कवित्त शक्ति प्राप्त होती है। इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने की क्षमता आ जाती है।

(५) विशुद्ध चक्र (CAROTID PLEXUS) :– इस चक्र की स्थिति कण्ठ प्रदेश में है। यह सोलह कमल दलों का चक्र है। दलों पर क्रमशः 'अ' से 'अः' तक सोलह स्वरों की स्थिति है। चक्र पूर्ण चन्द्रकार है। चन्द्रप्रभा से युक्त है। यह चक्र शून्य तथा आकाश तत्व का द्योतक है। यंत्र बीज 'हँ' और बीज वाहन हाथी है जिस पर प्रकाश देवता विराजमान हैं। सोलह कलाओं युक्त चन्द्र देवता है। जनः लोक है। उदान वायु का स्थान है। इस चक्र का ध्यान करने से साधक महाज्ञानी, शान्तचित्त, नीरोग, सदासुखी तथा दीर्घ जीवी हो जाता है।

(६) आज्ञाचक्र (MEDULLA PLEXUS) :– यह चक्र दोनों भौंवों के बीच में मेरुदण्ड के अन्दर ब्रह्मनाडी में स्थित है। इसमें श्वेत रंग के दो कमल दल होते हैं। दलों पर क्रमशः 'हँ' 'क्षँ' अक्षरों की स्थिति होती है। चक्र का यंत्र विद्युतप्रभायुक्त 'इतर' नामक अर्द्धनारीश्वर का लिंग है। यह यंत्र महतत्व का स्थान है। बीज यंत्र 'ॐ' है तथा वाहन 'नाद' है। नाद के ऊपर बिन्दु विराजमान है। इसके अधिपति देवता शिव अपनी शक्ति हाकिनी के साथ हैं। लोक तपः है। यंत्र लिंगाकार है। शिव के तृतीय नेत्र का स्थान है। इसके ध्यान करने से साधक को दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है। कुण्डलिनी शक्ति का मिलन यहीं शिव के साथ होता है। साधक मोक्ष का अधिकारी बन जाता है। उसके पूर्व जन्मों के पापों का विनाश सहज में ही हो जाता है। इस आज्ञाचक्र में मन और प्राण स्थिर हो जाने पर सम्प्रज्ञात समाधि की योग्यता हो जाती है। कुछ विद्वान आज्ञाचक्र के दलों पर 'हँ' 'सः' बीजाक्षर मानते हैं। कहते हैं कि यहीं "हँ स" "हँ स" का जप लगातार स्वतः ही चलता रहता है।

(७) सहस्रार चक्र (CEREBRAL PLEXUS) :– यह स्थान तालू के ऊपर मस्तिष्क में स्थित है। इसमें विभिन्न रंगों से युक्त हजार कमल दल हैं। दलों के ऊपर 'अ' से लेकर 'क्ष' तक सारे स्वर तथा वर्ण हैं। तत्वातीत तत्व है तथा बीज तत्व विसर्ग है। सत्य लोक है। वाहन बिन्दु है। अधिपति देवता, परब्रह्म अपनी महाशक्ति के साथ विराजमान हैं। यंत्र पूर्ण चन्द्र शुभ्र वर्ण हैं। यहां परम शिव से कुण्डलिनी महाशक्ति का संयोग लययोग का ध्येय है। साधक यहीं लयता तथा अजर–अमरता प्राप्त करता है। अधिक और प्राप्त करने की इच्छा से नहीं रह जाती। निर्गुण, निराकार, शुद्ध, चेतन परमात्मा यहीं प्रकाश रूप में स्थित रहता है। इससे साधक को परम शक्ति मिलती है।

महाशक्ति जीवनी शक्ति कुण्डलिनी नाडी की जागरण विधियाँ पृथक से दी जायेंगी।

❊❊❊

''प्रभु-भजन''

महेन्द्र-माधुरी (वाराणसी)

तेरी नाव किनारे लग जायेगी,
जा सिद्ध गुफा के द्वारे।।
जा सिद्ध गुफा के द्वारे, जा प्रभुजी के दरबारे
तेरी..........

अब मत भूल करो मेरे भाई
करो मेरे भाई करो मेरे भाई
अब मत भूल करो मेरे भाई
तेरी सोई किस्मत जग जायेगी
जा सिद्धगुफा के द्वारे।।
तेरी..........

सब कुछ छोड़ प्रभुजी के ऊपर
प्रभुजी के ऊपर, प्रभुजी के ऊपर
सब कुछ छोड़ प्रभुजी के ऊपर
तेरी सबरी मुश्किल कट जायेगी
जा सिद्धगुफा के द्वारे।।
तेरी........

सद्गुरु कृपा होय जब तोपे
होय जब तोपे, होय जब तोपे
सद्गुरु कृपा होय जब तोपे
तेरी जीवन बगिया खिल जायेगी
जा सिद्ध गुफा के द्वारे
तेरी..........

शोक समाचार

सभी गुरु भाई–बहिनों को यह समाचार देते हुए दुःख हो रहा है कि आश्रम के वरिष्ठ गुरु भाई पं० रामाश्रयजी का ६ अक्टूबर को लम्बी बीमारी के पश्चात देहावसान हो गया है। उन्होंने ४०–४२ वर्ष तक आश्रम की विभिन्न सेवायें की थी। वे लगभग ७२–७३ वर्ष के थे। आश्रम के ब्रह्मचारी उन्हें सोरी अपलाघाट ले गये तथा वहीं पर उनका अग्नि संस्कार किया गया। श्री प्रभुजी से प्रार्थना है कि इन्हें अपने अभय चरणों में स्थान दें। —संपादक

लीलावसान के बाद स्थूल दर्शन

केशव देव उपाध्याय (वाराणसी)

आराध्यदेव योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का यह कृपा प्रसंग जहां तक मुझे स्मरण है अप्रैल माह सन् उन्नीस सौ तिरान्वे का है। आराध्यदेव को अपना लीलावसान किये लगभग तीन साल का समय व्यतीत हो गया कानपुर मण्डल के हमारे भाई श्री प्रेमचन्द सविता जी अपनी प्रातःकालीन पूजा पाठ का कार्यक्रम समाप्त कर भोजनादि से निवृत होकर अपने कार्यस्थल आई०आई०टी० कानपुर में अपनी ड्यूटी में उपस्थित हो गये थे। उस समय भाई सविता दम्पत्ति को एक पुत्र एवं दो पुत्रियां थीं एवं सभी अपनी पढ़ाई करने स्कूल जा चुके थे। भाई जी की पत्नी अपनी घरेलू कार्यों को निपटाकर स्वयं भोजन कर आराम करने की नीयत से चौकी पर पड़ी हुई थीं। दिन के मध्यान्ह का समय था किसी ने दरवाजे की कालबेल बजायी। भाई जी की परम धर्मपरायण एवं श्री गुरुदेव की कृपाओं से लबालब श्रद्धा भाव से भरी हुयी धर्मपत्नी जी ने जिन्हें आगे हम सिर्फ बहन जी के नाम से सम्बोधित करेंगे दरवाजा खोला। दरवाजा खोलने पर उन्होंने देखा कि दरवाजे पर प्रसन्नमुद्रा में आराध्यदेव अपनी सहज मुस्कान के साथ खड़े हैं। बहन जी ने उन्हें प्रणाम किया एवं उनसे घर के अन्दर चलने की प्रार्थना की।

श्री सिद्धयोग के परम भाग्यशाली भाई-बहनों को इस सत्य रहस्य का बोध है या नहीं है; तो होना चाहिए कि सिद्ध पुरुष एवं ईश्वर की श्रेणी में आने वाले अवतारी पुरुष (श्रीकृष्ण, श्रीराम) इत्यादि। जब भी प्रकट होकर साधक को दर्शन देते हैं तो उस समय उस साधक के लिए समयान्तर हो जाता है। सरल शब्दों में इसे इस प्रकार समझा जा सकता है कि जिस समय साधक को अवतारी पुरुष का दर्शन होता है उसे रंचमात्र भी भान नहीं होता कि उसके श्री गुरुदेव या इष्ट प्रकट होकर दर्शन दे रहे हैं। उसको ऐसा लगता है कि ये अभी हैं और आश्रम या किसी स्थान से हमको दर्शन देने आये हुए हैं। हमारी बहन जी भी इससे अछूती नहीं रहीं एवं उन्हें इस बात का बिल्कुल ही ज्ञान नहीं रहा कि उनके श्री सद्गुरु देव महाराज अपना स्थूल शरीर करीब आज से तीन वर्ष पूर्व छोड़ चुके हैं। उनको ऐसा आभास हो रहा था कि हमारे श्री गुरुदेव जी महाराज किसी प्रोग्राम की यात्रा से हमारे घर पधारे हैं। जब श्री गुरुदेव जी महाराज मकान के अन्दर प्रवेश कर गये तो उन्होंने बाहर का दरवाजा बन्द कर दिया एवं अन्दर आकर चौकी पर कम्बल बिछाकर विराजमान कराया, आसन पर विराजमान होते ही श्री गुरुदेव जी महाराज ने आदेश दिया कि लल्ली ! हमें काफी थकान है एवं बड़ी तेज भूख लगी है हमें तत्काल स्नान का प्रबन्ध कराओ, बहन जी ने बाल्टी एवं टब अच्छी प्रकार से साफ किया उसमें हैण्डपाइप का ताजा एवं शीतल जल निकाल कर दोनों (पानी के टब एवं बाल्टी

भर दिया एवं आराध्य देव जी से स्नान करने के लिए प्रार्थना की।

बहन जी मन में एक बात सोच रही थीं कि धोती के स्थान पर स्नान के बाद पहनने के लिए क्या दिया जायेगा। उनके मनोगत् भाव को समझकर श्री सद्गुरु देव जी महाराज अपने मुखारबिन्दु से कहा कि लल्ली ! लल्ला प्रेमचन्द दो धोती खरीद कर लाया था, एक धोती पहनकर वह ध्यान में बैठता है तथा दूसरी धोती अपनी अलमारी में रखा है, उसे निकालकर हमें पहनने के लिए दो। बहनजी ने अलमारी से निकालकर धोती दिया एवं श्री गुरुदेव भगवान स्नान के बाद वह धोती धारण किया, बाद में बहन जी ने धोती साफ कर धूप में सूखने के लिए डाल दी। अब श्री गुरुदेव भगवान को भोजन क्या कराना है यह समस्या थी संयोग कुछ ऐसा था कि घर में फलाहार सूखा फल या और कोई पवित्र खाद्य पदार्थ नहीं था, जिसे श्री प्रभुजी के भोजन के लिए दिया जाय। बहन जी अभी सोच ही रहीं थी कि श्रीगुरुदेव जी को भोजन के लिए क्या दिया जाय योगेश्वर श्री आराध्यदेव जी ने कहा कि लल्ली ! आलू उबाल दो एवं तुम्हारे घर में सेंधा नमक रखा है उबले आलू को छीलकर काट दो एवं उस पर सेंधा नमक डाल दो यही हमारा फलाहार बन जायेगा।

बहन जी ने आलू का फलाहार तैयार करके गुरुदेव भगवान को भोजन के लिए परोस दिया एवं श्री आराध्यदेव जी ने भोजन ग्रहण कर लिया इसके बाद श्री मुख से आदेश दिया "लल्ली ! अब हम थोड़ी देर विश्राम करेंगे फिर सवाई धाम चले जायेंगे। तुम ऐसा करो कि चौकी को स्वच्छ जल से अच्छी प्रकार से साफ कर दो। उसके बाद उसका जल सुखा दो, उसके बाद कोई नई चादर या स्वच्छ चादर या कम्बल डाल दो हम उस पर विश्राम करेंगे। बहन जी ने श्री आराध्यदेव जी के आज्ञानुसार आसन लगा दिया कि श्री गुरुदेव भगवान इस पर विश्राम करें। श्रीमुख ने आदेश दिया कि लल्ली ! मैं जब तक आराम कर रहा हूँ तुम भी आराम करो। जब मुझे जाना होगा तुम्हें आवाज दूँगा। क्या अलौकिक एवं कल्पनातीत दृश्य है।

कालचक्र, युग चक्र एवं जग चाक को एक साथ चलाने वाले जगत नियन्ता त्रिलोकी नाथ श्री सद्गुरुदेव महाराज भाई सविता जी की चौकी पर विराजमान होकर विश्राम कर रहे हैं या इनके निवास स्थान को देवस्थली बना रहे हैं। कुछ देर बाद आराध्यदेव जी ने आवाज लगायी "लल्ली ! अब हम जाना चाहते हैं हमें अपना पूजा घर तो दिखा दो।" बहन जी ने पूजा कक्ष का दरवाजा खोला एवं सविता जी के ध्यान में बैठने वाले चौकी पर आसन लगा दिया, उसके बाद प्रार्थना किया कि श्री गुरुदेव जी महाराज चलिए पूजा घर देख लीजिए श्री गुरुदेव जी पूजा घर में प्रवेश किये दादा गुरुदेव एवं अपने स्वरूप को हाथ जोड़कर प्रणाम किये एवं फिर सूक्ष्म आरती किये उसके बाद समाधि की मुद्रा में विराजमान हो गये। बहन जी के देखते-देखते श्री आराध्यदेव जी का वह समाधि

स्थूल शरीर आसन से उठकर धीरे-धीरे चला एवं श्री गुरुदेव भगवान के स्वरूप में प्रवेश कर गया।

परम भाग्यशाली बहन जी पर श्री गुरुदेव जी की कृपा की वर्षा का क्षण समाप्त हो गया। अब तो यही कहना है कि :

कब क्या करोगे हे जनार्दन जानते हो तुम सभी।
ये ठाट है जितने जगत के जानते हो तुम सभी।।
गुरुवर तुम्हारे कार्य सारे सब प्रकार विचित्र है।
सब नेति-नेति पुकार कर गाते पवित्र चरित्र है।।
जैसे सूरों को शस्त्रधारी अस्त्र का आधार है।
हे इस वाणी हमें हमारा सब तुम्ही पर भार है।।
संसार में सब विधि हमारे सर्वसाधन हो तुम्हीं।
धन हो तुम्हीं, जन हो तुम्हीं, तन हो तुम्हीं, मन हो तुम्हीं।।

❊ ❊ ❊

श्री गुरुपद

दिनेश शर्मा, जरेरा (दिल्ली)

गुरुवर की छवि अद्भुत राजे।
मधु मुस्कान अधर अध खुलते दतियां मोतीन लाजे।
अधर कपोल सरोज लालिमा कोमल पुष्प लजावै।।
शशि समान मुख मण्डल दमकै अखियां कंज विराजै।
श्याम सलौने मुख मण्डल पर चंदन तिलक सुहावै।।
धवल जटा मुख दाढ़ी मूछें अदभुत छबी विराजै।
सौम्य सुडौल शरीर दिपै जिमि कोई लाला भावै।।
श्वेताम्बर पट धोती-कुर्ता हाथ में छड़ी सुहावै।
शाल पड़ी कन्धे पर जैसे कनक सुहागा पावै।।
सर्व सिद्ध सब गुण उर मूदें तनिक न भान करावैं।
सब कुछ जाने सब पहिचाने भेद न सुर मुनि पावै।।
सिद्धयोग श्री सिद्धगुफा सवांई गुरुवर की याद दिलावै।
प्रभुजी गुरुबिन सब कुछ सूना ये जीवन अब व्यर्थ ही जावै।।
क्यों निष्ठुर निरमोह बने गुरु तनिक दया ना आवै।
दीन पतित पर छोह करो ना दास सदा तुहरे गुन गावै।।

तमसो मा ज्योतिर्गमय

अन्धकार है ही नहीं। अस्तित्व तो प्रकाश का है, अन्धकार का कहाँ? प्रकाशाभाव के बल पर–उसका आधार लेकर अन्धकार था तो आभास भर ही रहा है। प्रकाश के रहते तो उसका नाम निशान भी नहीं रहता, रह सकता ही नहीं।

जब जहाँ जैसा जितना प्रकाशाभाव, तब वहाँ वैसा उतना ही अन्धकाराभास।

थोड़ी देर के लिये यह मान भी लें कि ऐसा नहीं है–अन्धकार का स्वतन्त्र अस्तित्व है तो भी इस मान्यता को प्रकाश में देखें, परखें, निष्कर्ष निकालें और विचार करें, स्पष्ट होगा कि–प्रकाश का कार्य है आलोकित करना। उसकी उपस्थिति में ही सब कुछ दृश्यमान है। अन्धकार का कार्य है अन्धा बना देना, उसके व्यापकत्व में ही हमें कुछ भी दिखायी नहीं देता। और जब अन्धकार निबिड़ तक हो–सूर्य, चन्द्रमा, तारक–तारिकाएँ, दीपक–दीपिकाएँ–कोई भी प्रकाश–प्रतिनिधि उसे चुनौती न दे रहा हो, तब तो उसी का एकच्छत्र साम्राज्य हो जाता है। कुछ भी द्रष्टव्य नहीं होता–हाथ पसारा नहीं सूझता। फिर,

अब यहीं जरा रुकें और गहरे उतरें। यह सब होते हुए भी एक वस्तु तो तब भी दीखती–सूझती ही रहती है। उसका दीखना–सूझना कभी बंद नहीं होता। वह क्या है? वह है अन्धकार स्वयम्। उसे कौन देखता है? देखने वाले की आँखें क्या हैं? उसका प्रकाशक कौन है?

यह दीखना–सूझना दर्शाता है कि निबिड़ अन्धकार में भी किसी–न–किसी मात्रा में प्रकाश है। प्रकाश के बिना प्रत्यक्ष कहाँ? दर्शन कहाँ? भले ही अन्धकार का ही दर्शन हो। है तो यह प्रकाश के अस्तित्व का सूचक ही।

एक बात और है। यदि अन्धकार का स्वतन्त्र अस्तित्व होता, तो वह स्वयं को भी हमारी दृष्टि से छुपाता–छिपाता–स्वतन्त्र रूप से कुछ किया करता। किंतु ऐसा होता कहाँ है? उसकी गहनता, पूर्णता भी अपनी निबिड़तम तमिस्रा में पल बढ़ती है–पर प्रकाश का नाश नहीं होता। निबिड़तम तमिस्रा के बोध का प्रकाश तो रहता ही है। निष्कर्ष कि–आलोक का कभी सर्वथा अभाव नहीं होता। वही ज्योति है।

अन्धकार की मिथ्या मान्यता ठहर नहीं पाती; क्योंकि अस्तित्व तो प्रकाश का है, अन्धकार का नहीं। अन्धकार का दर्शन तो प्रकाशमात्रा की न्यूनता है, अन्धकार की वास्तविकता नहीं।

सचमुच अन्धकार है ही नहीं। यथार्थतः सर्वत्र ज्योति–ही ज्योति है। प्रकाश का प्रभामण्डल सर्वतः परिव्याप्त है। वह परिस्थितिवश अन्धकार के प्रतिभासित झीने आवरण में ढक जाता है।

आवश्यकता है उस आलोक के दर्शन के लिये सतत प्रयत्न की–अज्ञानान्धकार से निपटने के लिये निरन्तर ज्ञानदीप प्रज्वलित करते रहने की। तभी साधना–जगत् आलोकित होगा। सत्यान्वेषी के सभी कुछ मुखरित हो जाने पर ही जीवन–यात्रा का सूत्र हाथ लग सकेगा। प्रकाशतत्त्व की ध्येय साधना तभी सफल होगी, जब यह स्थिर सत्य स्वतः सिद्ध होगा कि अन्धकार है ही नहीं और जो प्रतिभासित होता है, उससे हम ज्योतिर्मय प्रकाश की ओर मुड़ जायें। यही है श्रुति की यह प्रार्थना–'तमसो मा ज्योतिर्गमय'।

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Ag. 19/06-08

Novrber, 2006

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उत्कृष्ट का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सैंवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER

BOOK-POST

श्री/सुश्री

मीडिया पोस्ट

हृदय स्पर्शी सेवा

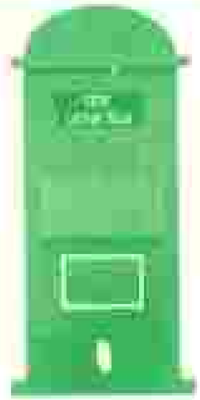

उत्पाद (ब्राण्ड) को बाजार में स्थापित करने के लिए एक अनोखी एवं प्रभावकारी योजना -

भिन्न माध्यमों से विज्ञापन की सुविधा

1. डाक वस्तुओं पर स्पेस आवंटन (स्थान चयन) का विज्ञापन
2. लैटर बॉक्सों पर स्थान का प्रायोजन (स्पोंसरशिप)
3. पेनल बाक्सों पर स्थान का प्रायोजन (स्पोंसरशिप) दर : रू. 1000 प्रति पैनल प्रतिमाह पेंटिंग चार्ज रू. 500.00 प्रति पैनल
4. डाकघर परिसर में होर्डिंग लगाकर विज्ञापन दर रू. 5.50 प्रति वर्ग फीट प्रति माह
5. डाकघर के अन्दर या बाहर ग्लोसाइन बोर्ड अथवा पोस्टर लगाकर विज्ञापन दर रू. 100/- प्रति वर्ग फुट प्रति माह
6. डाकघर के पर्दों पर स्वास्थ्य कॉम्प्लेशन की डाई लगाकर विज्ञापन दर रू0 100/- प्रति डाई प्रतिदिन डाई का मूल्य रू0 400/-
7. मेघदूत पोस्ट कार्ड के माध्यम से विज्ञापन अर्थात् पोस्ट कार्ड के आधे भाग पर उत्पादों का विज्ञापन : दर रू. 2/- प्रति पोस्ट कार्ड। मेघदूत पोस्ट कार्ड का विक्रय मूल्य केवल 25 पैसे मात्र।

संस्थापक-योग योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डा. दाऊलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सैंवाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर. एन. आई. रजि. नं. UPHIN/2004/14586 सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) दाऊलाल शर्मा